ग्रह का फेर

लेखक
श्रीयोगेन्द्रनाथ चौधरी, एम० ए०

विद्याविनोद ग्रन्थमाला का २३ वाँ पुष्प

ग्रह का फेर

या

शनि की दृष्टि

लेखक

श्रीयोगेन्द्रनाथ चौधुरी, एम० ए०

अनुवादक

श्री श्यामसुन्दर द्विवेदी "सुहृद"

एम० बी० बी० ए०

प्रकाशक

"चाँद" कार्यालय,

इलाहाबाद ।

प्रथम बार, २०००] जून, १९२५ [मूल्य आठ आने

प्रकाशक—
'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद।

मुद्रक—
पं० रामप्रसाद वाजपेयी,
कृष्णा-प्रेस,
हिवेट रोड, प्रयाग।

ग्रह का फेर

प्रथम परिच्छेद

दुःखिनी

" Alas ! what stay is there in human state,
Or who can shun invertable fate ?
The doom was written the decree was past
Ere the foundations of the world were cast "

—*Dryden*.
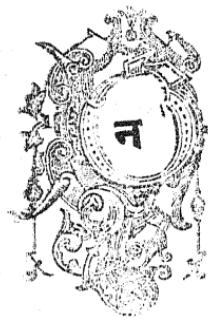
रेशचन्द्र ने इन्दु का केशाकर्षण करते हुए कहा—'लाओ रुपये दो !' सुनते ही इन्दुमती की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली। उसने उत्तर दिया—"क्यों अविश्वास करते हो ? कुञ्जी लो, ताला खोल कर देख लो, अब तो कुछ भी नहीं रहा !"

"क्यों तुम्हारे यार से आज कुछ भी नहीं मिला ?" नरेश की की आँखें लाल थीं। देह काँप रही थी। मुख से तीव्र सुरा

की गंध आ रही थी। एक विद्रुप कटाक्ष कर क्रोधावेश में उसने यह बात कह डाली। इन्दुमती बालिका थी तथापि नरेश की बात के प्रत्येक वर्ण से उसका मर्मान्त तक बिंध गया!

नतमस्तक हो रुद्धकण्ठ से उसने उत्तर दिया—"वे कह गये हैं कि अब वे हम लोगों की सहायता नहीं कर सकेंगे। कारण उनके पास भी अब कुछ नहीं रहा।"

माघ का महीना था। रविवार की सन्ध्या। पश्चिम दिशा में पर्वत की आड़ में म्लान सूर्य धीरे धीरे डूब रहा था। विरहिणी रजनी के मलिन अवगुण्ठन की भाँति धूम्र कुहाशे में राँची नगरी के सुदूरवर्ती प्रासाद-शृङ्ग आवृत हो उठे थे। "डैमफूल" कह कर क्रोध से गरजते हुए नरेशचन्द्र हिलते-डोलते गृह से बाहर राज-पथ पर निकल आये।

इन्दुमती बड़ी दुःखिनी है। शैशवावस्था में मातृहीना हो गयी। नववर्षीया होते ही पिता की मृत्यु हुई। संसार भर में अब ऐसा कोई न रहा जिसे इन्दु अपना कह सके। पितृ वियोग के कुछ ही दिन बाद दूर सम्पर्कीया एक मौसी ने कृपा पूर्वक अपने यहाँ गिरडीह में लाकर उसे रखा। पास ही बालिका विद्यालय था। वह उसी में पढ़ती थी।

× × ×

नरेश के पिता का नाम था श्रीकण्ठराय। जन्म-स्थान गिरडीह। इन्दु की मौसी के घर के पास ही उनका भी घर था। गिरडीह में श्रीकण्ठराय की साधारण विषय सम्पत्ति थी। वे घर पर रह कर उसका शासन-प्रबन्ध किया करते थे। नरेश

बाल्यावस्था में मातृहीन हो गया। वह कलकत्ते के किसी मेस में रह कर पढ़ता था। किन्तु वहाँ उसका कोई योग्य अभिभावक नहीं था। फलतः यौवन के प्रारम्भ में संग-दोष से उसका चरित्र कलुषित होने लगा। उसका पान-दोष प्रबल हो उठा। जब नरेश इक्कीस वर्ष का हुआ तब हठात् श्रीकण्ठराय ने विसूचिका रोग के कारण परलोक यात्रा की। उस समय नरेश तीसरी बार प्रवेशिका परीक्षा में तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होकर प्रथम आर्ट में भर्ती हुआ था। जो हो, अब उसका कलकत्ता प्रवास असम्भव हो गया। गिरडीह में पैतृक सम्पत्ति का तत्वावधान करने वाला और कोई न रहा। दैवयोग से वही पिता माता का एक मात्र सन्तान था। अस्तु!

नरेश गिरडीह आकर रहने लगा। किन्तु प्रतिवेशी गृह की नवागता बालिका का कमलमुख देखकर वह अपने को भूल गया। उस समय इन्दुमती प्रायः ग्यारह वर्ष की थी। नरेश ने देखा— इन्दु की देह कान्ति ज्योत्स्ना के समान निर्मल, मुख प्रभात के स्फुटोन्मुख कमल के समान अरुण, नयनों में कुरंगी की सी चपलता। उसके सिर में चक्कर आ गया। दिल धड़कने लगा।

सुरेन्द्रनाथ नरेश का बाल्यबन्धु था। उसका जन्म-स्थान गिरडीह में ही था। उसका घर नरेश के घर से बहुत दूर नहीं था। सुरेन्द्र पितृहीन था अतः गृह-प्रबंध माता को ही करना पड़ता था। सुरेन्द्र अपनी विधवा माता का इकलौता पुत्र था। आर्थिक अवस्था ख़ूब अच्छी थी। नगद रुपये भी यथेष्ट थे। प्रवेशिका श्रेणी तक नरेश और सुरेन्द्र एक साथ ही पढ़ते थे।

दोनों ही एक पथ के पथिक थे। सुरेन्द्र की माता ने अपने एक मात्र पुत्र की चरित्रहीनता की बात सुनकर उसे अपने पास बुला लिया। किन्तु गिरडीह में जाने से सुरेन्द्र का पानदोष और भी बढ़ गया। उस समय उसकी उम्र केवल तेईस वर्ष की थी।

अकस्मात् एक दिन नरेश ने आकर सुरेन का हाथ पकड़ कर कहा—'इन्दु के साथ मेरे विवाह में तुम्हें सहायता देनी होगी।' सुरेन्द्र ने इन्दु की मौसी के घर जाकर उसे देखा, देखते ही कह उठा—"यह रत्न बाज़ार में ही शोभा पा सकता है।" किन्तु मित्र के अनुरोध की उपेक्षा नहीं कर सका। सुरेन की चेष्टा से थोड़े ही दिनों में इन्दु नरेश की गृहिणी के पद पर अधिष्ठित हो गयी।

नरेश और सुरेन दोनों ही साहेबी मिज़ाज के मनुष्य थे। शिर के पीछे के बाल आचर्म कटा लेते थे, नाक पर चश्मा चढ़ाते, पुरुष-विधवा की भाँति दाढ़ी मूँछ मुड़ा लेते और छड़ी घुमाते हुए क्लब में जाया करते थे। विवाह के थोड़े ही दिन बाद सुरेन ने नरेश से कहा कि जिस प्रकार साहेब लोग 'हनीमून' करते हैं वैसे उसे भी इन्दु के साथ मधुमास विताने बाहर जाना चाहिये। नरेश की आर्थिक स्थिति बड़ी ही ख़राब हो गयी था, पैतृक सम्पत्ति भी विवाहादि में ही लग चुकी थी। अतः सुरेन ने मधुमास के समस्त व्यय को स्वयं वहन करने का वचन दिया। स्थान निर्वाचित हुआ—राँची।

× × ×

इन्दु सुरेन के साथ निःसंकोच भाव से बातें करती थी। नरेश ही पहले सब बात की सूचना दिया करता था। सरला बालिका सुरेन को बड़े भाई के समान समझ कर उसकी भक्ति और विश्वास करती थी। किन्तु सुरेन उसे किस भाव से देखता था उसे भगवान ही जानें !

× × ×

हनी-मून के लिये राँची आये उन लोगों को आज प्रायः दो वर्ष हो गये। इन्दु और नरेश एक मकान में अलग रहते थे। सुरेश मेस में रहता था, पर बन्धु और बन्धु-बधू का समस्त व्यय स्वयं बहन करता था। इसी बीच महाजनों ने आकर गिरडीह में नरेश की बची-खुची समस्त पैतृक सम्पत्ति पर क़ब्जा कर लिया। कुप्रवृत्ति-पारायण पुत्र के लिये शोक करते करते सुरेन की माता का देहावसान हो गया !

राँची आकर दोनों ही स्वाधीन हो गये। दिवस का अधिकांश समय वे चहल पहल में ही बिताते थे। किसी किसी दिन नरेश घर जाता और बालिका इन्दु के ऊपर निष्ठुर व्यवहार करता था। उसका एक दृश्य पाठक देख ही चुके हैं।

विवाह के एक वर्ष बाद तक नरेश ने इन्दु का ख़ूब ही आदर सत्कार किया। क्रमशः कामी के दूषित हृदय में चंचल प्रणय का प्रथम उत्ताप कम होने लगा। अब उधर इन्दु के लिये सुरेन्द्र का व्यग्र भाव अधिक दिखाई देने लगा। सुरेन पहले नरेश की अनुपस्थिति में उसके घर कभी नहीं जाता था, इन्दु भी संकोच करके चलती थी। किन्तु दिनोंदिन आर्थिक सहायता

देकर सुरेन ने दोनों ही को कृतज्ञता पाश में आवद्ध कर लिया। उस समय अनिच्छा रहने पर भी नरेश उसे घर में आने से नहीं रोक सकता था। घर में एक बुढ़िया नौकरानी थी, वह सुरेन बाबू को इन्दु के पास जाने में रोकटोक नहीं करती थी। किन्तु इसका फल विषयमय फला। नरेश को इन्दु के चरित्र में सन्देह होने लगा। घर आकर प्रतिदिन वह दुःखिनी बालिका को निर्यातन करने लगा। विगत एक वर्ष में एक दिन भी इन्दु को स्वामी के मुख से मधुर बचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। कोमल कलिका की भाँति हतभागिनी बालिका भीतर ही भीतर जल कर क्रमशः क्षीण और मलिन हो गई। उस समय इन्दु का त्रियोदश वर्ष आरम्भ हो रहा था।

× × ×

नरेश चला गया। इन्दु सुसुक सुसुक कर तब भी रो रही थी। बुढ़िया नौकरानी आकर बालिका की आँखों का जल पोंछ कर बोली—'भाग्य का दोष है! बहू, भाग्य का दोष है!! नहीं तो ऐसे सोने के समान बहू को बाबू पावों से ठुकरा न कर चले जाते।'

इन्दु रुद्धकण्ठ से बोली—"सुन, बूढ़ी, मुझे थोड़ी सी विष ला दे, मुझ से अब सहा नहीं जाता। बाबा ने एक दिन एक दैवज्ञ के मुख के सुना था—कि मेरी त्रयोदश वर्ष की उमर में मेरे ऊपर शनि की पूर्ण दृष्टि होगी, अब मैं न बचूँगी!"

दूसरा परिच्छेद

सन्देह का विष

See, what a ready tongue suspicion hath !
He that but fears the thing he would not know,
Hath, by instinct, knowledge from other's eyes,
That what he feared is chanced."

—*Shakespeare.*

ग जीर्ण आतुर के निथर-जीवन के ऊपर मृत्यु की कालायवनिका की भाँति धीरे धीरे सन्ध्या का अन्धकार आकर खड़ा हो गया। नगर पथ में अनेक आलोक मालाएँ प्रज्वलित हो गयीं।

इन्दु ने उस समय भी रोशनी नहीं जलाई थी। स्तब्ध होकर बिछौने के ऊपर सोयी हुई थी। बाहर से किसी ने पुकारा—"इन्दु"! इन्दु ने धीरे से उठकर दीपक जलाया। दरवाज़े पर आकर देखा कि सुरेन खड़ा है।

इन्दु को देख ते ही सुरेन ने व्यस्त भाव से पूछा—"यह क्या इन्दु! तुम्हारी आँखों में जल क्यों?" प्रश्न सुनते ही इन्दु की आँखों से छल छल कर जल की धारा बह निकली। वह कुछ न कह शय्या के ऊपर जाकर बैठ गई। सुरेन ने शय्या के

पास ही बैठ कर इन्दु का हाथ पकड़ लिया। वह सुरेन को बड़ा भाई समझती थी। उसका आदर पाते ही बालिका का अश्रुजल मुक्त-प्रवाह से बह निकला!

नरेश आज तीव्र सुरापान कर आया है। आँखें, रक्त वर्ण हैं, पावों में जूते नहीं हैं, बदन का कुर्ता कहीं रास्ते में फेंक आया है। सीढ़ी के सहारे अन्धेरे में ही वह ऊपर आया, किन्तु शय्या-गृह में जो कुछ देखा उससे उसका संज्ञा-लोप होने का उपक्रम होने लगा। उसने देखा कि सुरेन उसकी शय्या के ऊपर इन्दु के पास बैठ कर उसका अश्रुमोचन कर रहा है! उसी दम यदि उसके मस्तक पर कृष्ण सर्प आकर डस लेता तो इतनी यंत्रणा न होती! दाँत पीसते हुये भयभीत होकर त्रस्तपद से नीचे उतर गया। इन्दु अथवा सुरेन कोई भी उसे नहीं देख सका।

सुरेन बोला—"इस प्रकार का पति ही तुम्हें मिला है।" इन्दु नीरव थी। सुरेन फिर बोला—"देखो इन्दु, कई दिनों से तुम से एक बात कहना चाहता हूँ पर आज तक नहीं कह सका।" इन्दु ने पूछा—"क्या?"

सुरेन—"उसे छोड़ देने से क्या काम नहीं चल सकता?"

इन्दु—"यह क्या कह रहे हो?"

इस बार सुरेन ने इन्दु का हाथ जोर से पकड़ कर कहा—"सुनो इन्दु, जिस दिन पहले पहल मैंने तुमको देखा उसी दिन से तुम मेरे हृदय में बस गयी हो। तुम्हारे लिये ही मेरा राँची

प्रवास हुआ है। बोलो, तुम मेरी हो कर रहोगी ? बोलो—कहो तो इसी दम राँची छोड़ कर दूसरी जगह चले चलें।"

सुरेन ने इन्दु को ज़ोर अपनी ओर खींचने की चेष्टा की। अकस्मात् जैसे बिच्छू ने काट खाया हो इस प्रकार इन्दु पल मारते सुरेन से अलग हट कर खड़ी हो गयी। सुरेन फिर भी इन्दु की ओर बढ़ा। बालिका पदाहत भुजंगी की भाँति ग्रीवा वक्र करके बोली—"सावधान! मैं तुम्हें बड़ा भाई समझती थी। इस समय देखती हूँ कि तुम नर-पिशाच हो। तुम मेरे स्वामी के पद्रेणु के भी बराबर नहीं हो।"

सुरेन मानो अचानक चैतन्य हो गया! मुहूर्त भर स्तब्ध रह कर उसने न जाने क्या सोचा-विचारा! वहाँ और अधिक नहीं ठहर सका। उसे मालूम होने लगा कि उसके मस्तक में सारा विश्व घूम रहा है। कैसी भूल कर बैठने के लिये वह उद्यत हुआ था! क्लांत होकर सुरेन शय्या के ऊपर बैठना ही चाहता था कि देखा—भूखे व्याघ्र की भाँति नरेश सामने खड़ा है। उसके नेत्रों से अग्नि की वर्षा हो रही थी ओष्ठ और अधर काँप रहे थे! आत्म-संयम करके नरेश ने धीरे से पुकारा—'दारोग़ा बाबू! इस ओर!'

'दारोग़ा' सुनते ही काँपती हुई आवाज़ से सुरेन ने पूछा—"ऐं, दारोग़ा! दारोग़ा!!" इन्दु डर कर दरवाज़े की बग़ल में छिप गयी।

नरेश ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—"क्या रे विश्वास-घातक अब क्यों पूछता है ?"

काँपते हुए सुरेन ने नरेश का हाथ पकड़ कर कहा—"क्षमा करो नरेश, मैं निर्दोष हूँ। मुझे पुलिस के हवाले मत करो!" पर नरेश ने धक्का देते हुए कहा—"दूर हो विश्वास-घातक! हम से अलग रह!"

क्षमा प्राप्ति की आशा से सुरेन फिर कहने लगा—"जीवन में मैंने तुम्हारे अनेकों उपकार किये हैं। केवल एक बार मुझे क्षमा कर दो। भाई नरेश! मुझे जेल मत भिजवाओ। ऐसा होने से मैं यह मुख संसार में किसी को भी नहीं दिखा सकूँगा मैं आत्म-हत्या कर लूँगा। तुम्हारे ही लिये मेरा सर्वस्व स्वाहा हो गया है। नरेश! मुझे एक बार क्षमा कर दो!"

धीरे से पुलिस के दारोग़ा और दो सिपाहियों ने आकर सुरेन का हाथ पकड़ लिया और चलते बने!

सुरेन को दो वर्ष के कारावास का दण्ड मिला।

तीसरा परिच्छेद

पादरी के आश्रम में

"Hard was their lodging homely was their food,
For all their luxury was doing good."

—*Garth.*

आज प्रायः एक सप्ताह हो गया, नरेश की कोई ख़बर नहीं मिली। पुलिस के पीछे ही वह घर से बाहर निकला पर अब तक लौट कर नहीं आया। बुढ़िया ने अपनी शक्ति भर ढूँढ़ा पर कुछ भी पता न चला। घर में एक कौड़ी भी न थी। थे तो इन्दु के बदन पर एकाध गहने! उन्हें भी बेच-बाच कर चार दिन कट गये। अब इस प्रकार चलना कठिन है। इन्दु निरुपाय हो गयी। आश्रय-भिक्षा के लिए मौसी के पास भी पत्र लिखे उसे तीन दिन बीत गये पर कोई उत्तर अब तक नहीं आया। हा! इस हरे भरे संसार में इस हत-भागिनी को अपना कहने वाला कोई नहीं है!

सन्ध्या होने के कुछ देर पहले बुढ़िया इन्दु के हाथ में दो चिट्ठियाँ देकर चली गयी। काँपते हुये हाथों से इन्दु ने उनमें से एक को खोला—वह उसके पति का पत्र था, जिसमें लिखा था:—

बम्बई, ६ फ़रवरी

इन्दु !

तुम हो विश्वास-घातिनी, पापिष्ठा ! मैंने तुम्हें चिरकाल के लिये त्याग दिया । गत जीवन में मैंने अत्याधिक पाप किये हैं, उनके प्रायश्चित के लिये युद्ध क्षेत्र को जाता हूँ । यदि कभी मैं भारत को लौट भी आया तो तुम्हारे साथ साक्षात् नहीं होगा !!

—नरेश चन्द्र राय

पढ़ते ही इन्दु के सिर में चक्कर आगया ! इन्दु खड़ी थी, सहसा दीवार के सहारे ज़मीन पर बैठ गयी !

उसी समय योरोपीय महासमर आरम्भ हुआ था । सरकार भारतवर्ष से सैन्य-संग्रह करने में संलग्न थी । अवसर पाकर नरेश ने भी नौकरी कर विदेश की यात्रा की । इन्दु ने मतलब समझ लिया । इसके बाद दूसरा पत्र खोलने का उसे साहस नहीं हुआ । अकस्मात् गिरडीह के पोस्ट ऑफ़िस की मुहर देख उसने जाना कि मौसी को लिखे हुये पत्र का यह उत्तर है । हत-भागिनी को चारों ओर से निराशा ही निराशा नज़र आती है तथापि आशा की एक क्षीणरश्मि उसके अन्धकारमय आकाश के शेष प्रान्त में टिमटिमा रही थी । वह थी उसकी मौसी का स्नेह । काँपते हुए हाथों से उसे खोल कर देखा तो लिखा था:—

गिरडीह, २१ माघ

बहिन,

आज पन्द्रह दिन हुये माँ का स्वर्गवास हो गया । हम लोग इस समय बड़ी ही बुरी अवस्था में है, तुम यहाँ मत आना !

तुम्हारे स्नेह की तृषिता

—सरला

इन्दु बेहोश हो गई। शरत की रौद्र तपिता केतकी कलिका की भाँति हतभागिनी भूमि पर गिर पड़ी।

× × ×

जिस समय इन्दु को होश हुआ उस समय उसने अपने को एक निर्जन प्रकोष्ठ में एक सुसज्जित पलंग के ऊपर सोये पाया। निकट ही एक वृद्धा पादरी-रमणी उसके लिये भोजन बना रही थी। पास ही एक छोटे से टेबुल पर रोगी की दवा और पथ्य रखे थे। और कोई कहीं नहीं था। सहसा इन्दु ने उठने की चेष्टा की, किन्तु वृद्धा रमणी ने बीच ही में रोक कर कहा—"डरो मत, निश्चिन्त हो कर सो जाओ। अब भी तुम्हें ज्वर बना हुआ है, चंचल होने से रोग बढ़ जायगा।" इन्दु का शरीर अब सन्न हो गया था,—कुछ न बोल कर उसने चुपचाप आखें मूँद लीं।

इन्दु को चिट्ठी देने के कुछ कुछ देर बाद बुढ़िया ने आकर देखा कि बालिका बेहोश पड़ी हुई है। उसने बहुत चेष्टा की पर इन्दु को होश नहीं हुआ। आधी रात को जाड़ा देकर उसे और भी अधिक बुख़ार हो आया। बुढ़िया ने हत-बुद्धि होकर रात इन्दु के पास ही बैठ कर काटी।

सुदूर पर्वत-शृंग की अन्तराल से प्रथम कुहर के साथ ही साथ प्रभात समीरण ने आकर बुढ़िया के उष्ण मस्तक का स्पर्श किया। बुढ़िया ने जंगले के छिद्रों द्वारा देखा कि पूर्व गगन में बाल-भानु का प्रथम राग संचार हुआ है। और राज-पथ पर दो एक नागरिक व्यस्त भाव से गमनागमन कर रहे हैं। बिना देर किये वह घर से बाहर आयी। वह जानती था कि पादरियों का

गिर्जाघर और वासस्थान निकट ही है। वे निराश्रय को आश्रय देते हैं, आतुर को अन्न-दान करते हैं। इन्दु का भी तो इस संसार में कोई आश्रय नहीं था। इसलिए इस विपद् के दिन में बुढ़िया ने इधर उधर कुछ न सोच कर पादरी रमणियों के पास जा सभी बातें कह दीं। उसी दम भाड़े की गाड़ी लिये हुए कई आदमी आये और मठधारणी इन्दु को धर्मशाला में ले गये। उसके बाद हम लोगों ने उस हतभागिनी को देखा ही है!

चौथा परिच्छेद

शिलांग पर्वत

Hills peep over hills, and Alps on Alps arise !

—*Pope.*

शिलांग पर्वतमाला थोड़ी दूर है। पर्वत के ऊपर पर्वत उठ खड़े हुये हैं। उसका शेष प्रान्त रजनी के एक विस्मृत स्वप्न की भाँति सुदूर दिगन्त में धूम्र मेघ के साथ एक होकर कहीं मिल गया है ! —वह गम्भीर उदास मूर्ति हो गया है।

उसके नीचे मिशनरी विद्यालय का छात्र बास है। शनिवार के मध्यानोपरान्त द्वितल गृह के बरामदे में बैठ कर दो बालिकाएँ बातें कर रही हैं। कनिष्ठा बोली—'बहिन ! कलकत्ते की एक और कथा सुनाओ। ज्येष्ठा, ने कहा क्या एक और कथा सुनेगी ? अच्छा सुन—"कलकत्ते के काली-घाट में अनेक बकरों को काटा जाता है। किन्तु जो लोग उन्हें काटते हैं वे ख़ूब उस्ताद होते हैं। 'बकरे का मुण्ड मात्र लेगें' ऐसा कह कर वे लोग इस प्रकार काटते हैं कि उसके मुःख के निकटवर्ती पाँव तक कट जाता है !

एक बार एक ब्राह्मण पूजा देने के लिये गया था। उसकी ऐसी कार्रवाई को देख कर क्रोध पूर्वक बोला—'बाबू बकरे की जीभ काट कर हमारे हाथ दे कर बकरे को घर ले चलो। दो दिन रखने के बाद खाया जायगा।'

कनिष्टा ने ज्येष्टा के दोनों हाथों को अच्छी तरह से पकड़ कर कहा—'बहिन एक और!' ज्येष्टा बोली—"अच्छा सुन! एक दिन एक भिखारी किसी कृपण के यहाँ भिक्षा माँगने गया और यह सोच कर कि वह दया करेगा बोला—'बाबा मैंने दो दिन से कुछ भी नहीं खाया है।' कृपण ने सुनते ही उसकी ओर घूम कर एक दीर्घ निःश्वास पूर्वक कहा—'बाबू तुम बड़े ही भाग्यवान् हो। तुम बिन चेष्टा किये ही दो दिनों तक उपवास कर सकते हो पर मुझ से तो अनेक चेष्टा करने पर भी एक दिन भी नहीं किया जा सकता।' और एक दिन एक आदमी ने अपने भाई से कहा—देखो भाई! उस दिन एक लड़का गंगाजी में डूब कर मर गया। ईश्वर की शपथ करता हूँ कि मैं अब कभी भी तैरना सीखने नहीं जाऊँगा।"

कनिष्टा बीच में ही बोल उठी—"सुनो बहन, हमें भी एक क़िस्सा याद आगया। एक मकान की छत पर एक कबूतर बैठा था। नीचे एक शृगाल आकर बोला—'देखो भाई, मालूम होता है कि तुमने अब तक भी यह नहीं सुना है कि पशु पक्षी इत्यादि जीव जन्तुओं के बीच इस प्रकार की सन्धि हुई है कि कोई भी किसी का अनिष्ट नहीं करेगा। अतएव नीचे आओ तुम्हारे साथ आलिङ्गन कर लें।' कबूतर कुछ उत्तर न

देकर इधर उधर देखने लगा। कुछ ही क्षण बाद बोला 'हाँ' अच्छा ही हुआ है भाई! वही देखता हूँ कि हमारे घर का कुत्ता इधर को ही आ रहा है। तुम ठहरो पहले उसके ही साथ गाढ़ालिङ्गन हो ले।' इतना सुनते ही वह धीरे धीरे खिसकने लगा और बोलता गया—'तो आज रहने दो। मालूम होता है कुत्ते ने भी हम लोगों की सन्धि की बात नहीं सुनी है।' इतना कहकर बालिका खूब हँसी।

इसी समय एक और बालिका आकर ज्येष्ठा से बोली— इन्दु! तुम भी तो कुछ दिनों तक राँची में थीं। देखो आज समाचार-पत्र में राँची की एक अद्भुत घटना लिखी है। यह कह कर उसने एक दैनिक-पत्र इन्दुमती की ओर फेंक दिया। इन्दु उसे सव्यग्रभाव से उठाकर पढ़ने लगी।

दैवात् वह ज्येष्ठा बालिका पाठकों की चिर परिचिता इन्दुमती ही है। जब वह ज्वर-मुक्त हुई तब पादियों ने उसकी समस्त बातों का पता लगा कर जान लिया कि इस संसार में उसका और कोई नहीं है। तब उन लोगों ने उससे पूछा कि तुम खृष्टि धर्म में दीक्षित होना चाहती हो या नहीं। बुद्धिमती इन्दुमती ने उत्तर दिया—"मैं अभी अबोध बालिका हूँ। धर्म नहीं जानती। ईश्वर को नहीं जानती। आप लोग दया कर मुझे आश्रय दीजिये, शिक्षा दीजिये।" पादियों का हृदय बालिका की सकरुण उक्ति से पिघल गया और उपयुक्त शिक्षा के लिये उसे शिलांग भेज दिया गया।

उस बात के बीते आज दो वर्ष होगये। इन्दु ने अब शिल्प

कार्य सीखा है। गाना गा सकती है। अङ्गरेज़ी भी अच्छी तरह पढ़ना जानती है। कहने का तात्पर्य यह कि इन्दु इस समय पूर्ण स्वच्छन्द है। सन्तप्तता के दुःस्वप्न की स्मृति की भाँति राँची-प्रवास की समस्त स्मृति इन्दु आज बलात्कार प्रायः भूल-सी गयी है। जननी-रूपा मठधारिणियों के अपत्य स्नेह में आज उसके तप्त हृदय की समस्त ज्वाला शान्त हो गयी है।

समाचार पत्र का एक अंश पढ़ कर इन्दु एक बार ही काँप उठी। अकस्मात् उसका मुख पाण्डु-वर्ण का हो गया। उसमें लिखा था—'सुरेन्द्र नाथ नामक एक युवक अनाधिकार प्रवेश कर किसी भद्र-महिला का अपमान करना चाहता था इस अभियोग में उसे दो वर्ष का कारा-दण्ड मिला था। गत दिवस जेल से मुक्त होकर नदी के जल में उसने आत्म-हत्या कर ली है! उसके परित्यक्त वस्त्रादि नदी के किनारे पड़े हैं; किन्तु मृतदेह का अब तक भी कुछ पता नहीं मिला है। पुलिस उसकी खोज कर रही है।

इन्दु दोनों हाथों से वक्ष-देश ख़ूब दबा कर रुद्ध-श्वास से इधर इधर घूमने लगी। उसी क्षण मोटे अक्षरों में संवाद-पत्र के एक और अंश में लिखे एक समाचार की ओर उसकी दृष्टि आकर्षित होगयी—फ़्राँस के युद्ध में मृत सैनिकों के नाम। इन्दु ने काँपते हुए हाथों से फिर पत्र को उठा लिया किन्तु उसकी कुछ पंक्तियाँ पढ़ते ही उसका शरीर विवर्ण हो उठा, देह काँपने लगी। उसने देखा मृत श्रेणी के प्रथम ही अपने स्वामी का नाम! अर्द्ध-संज्ञा भाव से वह अपने कमरे में गयी और शय्या के ऊपर लेट गयी!

× × ×

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। इन्दु का दिन भी एक-एक करके दो वर्ष तक चला गया। इन्दु अब बालिका ही नहीं रही। वह पूर्ण षोड़शी होगयी है। बालिका की दुःखकातर अपूर्ण देह में इतने दिनों तक जो सुषमाराशि आत्म-गोपन कर रही थी, इस समय वही उसके भरे यौवन के उच्छ्वसित वक्ष में तरङ्गित ज्वार की भाँति दुकूल प्लावित कर के प्रसारित हो रही है। इन्दु का सुधाकन्ठ इस समय किन्नरी की तान है, देह में स्वर्ग-कन्या की विमल कान्ति है।

इन्दु के जीवन के एक अङ्क में यवनिका-पात होगया। मानव-जगत में उसके जितने प्रकार के बन्धन थे, वे सभी एक एक करके छिन्न हो गये। अब इन्दु नवीन जीवन आरम्भ करना चाहती है। वह आजकल बालिकाओं के साथ उतना नहीं मिलती। उसके कमरे के जङ्गले के सामने एक देवदारु का वृक्ष है। उसके अर्द्धपथ मे नील आकाश के नीचे धूम्र मेघ उड़ते हुए जाते हैं। इन्दु बैठे बैठे ध्यानावस्थित होकर वही दृश्य देखा करती है। वृक्ष पर बैठ कर पपीही बोलती है, इन्दु उसे प्रेम से सुनती है—पर किस भाव से!

सुदूल शैल शृंग में अस्तगामी सूर्य की अन्तिम किरण रेखा मिलती जा रही थी। इन्दु बरामदे में बैठ कर वही देख रही थी। इसी समय एक मठ-धारिणी ने आकर उसको पीछे से एक काग़ज़ का टुकड़ा देकर कहा—'मिस इन्दुमती! तुमने कलकत्ते जाने के लिये कई बार आग्रह प्रकाश किया है। यह देखो एक बढ़िया

नौकरी का विज्ञापन। इच्छा हो तो इसके लिये आवेदन पत्र भेज सकती हो।'

इन्दु ने साग्रह उस समाचार पत्र को पढ़ाः—

'हमारी दशवर्षीया कन्या के लिये एक शिक्षिका और संगिनी की आवश्यकता है, वेतन योग्यतानुसार १००) रु० मासिक दिया जायगा। युरोपीय प्रथानुसार शिक्षिता रमणी के ही आवेदन पत्र पर विशेष ध्यान दिया जायगा।'

मि० एन० सी० मलिक बार-ऐट-लॉ,

बालीगञ्ज, कलकत्ता।

× × ×

पाँचवाँ परिच्छेद

नवजीवन

"To love early and marry late is to hear a lark singing at dawn, and at night to eat it roasted for supper."

—*Ritcher.*

फाल्गुन का महीना है। प्रभात हो गया है, किन्तु आकाश मेघाच्छन्न है। अनतिदूर बालीगंज के एक प्रान्त में तृणावलम्बी अनन्त नीहारकणिका के ऊपर सूर्य की म्लान रश्मि एक एक बार पतित होकर मुहूर्त्त भर में ही फिर मलिन छाया में मिल जाती है।

बरामदे में बैठकर श्रीमान् मल्लिक श्रीमती मल्लिका के साथ बातें कर रहे थे। इसी समय धीरे से श्रीमती चौधरानी ने प्रवेश किया। मल्लिक दम्पति ने व्यस्त भाव से उठ कर उनका अभिवादन किया।

"इस बदली के दिन शुभागमन कैसे हुआ? घर पर कुशल तो है? मिहिर क्या करता है?" एक बार ही श्री० मल्लिक ने

ऐसे अनेक प्रश्नों के ढेर लगा दिए। श्रीमती चौधरानी ने अनन्य-मनस्क होकर कहा—"हाँ, श्रीमान् समान समाचार अच्छा है। मिहिर वायु-सेवन के लिये बाहर गया है।" इतना कह कर वह मानो चिन्ता सागर में डूब गयी। तब श्रीमती मल्लिका ने व्यग्र होकर पूछा—'आपको कुछ चिन्तित देखती हूँ। मालूम होता है कि आप कुछ और कहना चाहती हैं।'

चौधरानी ने कहा—"हाँ भाई, उसी के लिये तो आयी हूँ। मैं कहती थी कि अच्छा होता यदि उसका विवाह पन्द्रह दिनों के बाद ही होता। मेरा भी स्वास्थ्य इधर अच्छा नहीं है—इसी लिये इच्छा थी कि एकाध मास बाद एक बार मिहिर को लेकर पच्छिम की ओर जाऊँगी।"

मल्लिक महाशय ने कहा—"यह तो आनन्द की ही बात है। दूसरे की लड़की को आश्रय दिया है—अब जितना ही शीघ्र उसकी सद्गति हो जाय उतना ही अच्छा है। हम लोगों को इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं है।"

मल्लिक-पत्नी ने साग्रह पूछा—"मिहिर को तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है?"

अभ्यागता ने उत्तर दिया—'भाई। वह, तो अब भी बालक ही है। उसे आपत्ति या अनापत्ति क्या हो सकती है। 'शुभस्य शीघ्रम्' ही अच्छा होता है।' मल्लिक महाशय ने कहाः—"तथास्तु! बन्दोबस्त तो सब पक्का ही हुआ है, अब कार्य में लग जाना ही ठीक होगा।"

प्रफुल्लवदन होकर चौधरी-पत्नी ने दोनों से विदा ली।

आज छः मास से इन्दुमती शिलाँग परित्याग कर बालीगंज में बैरिस्टर मल्लिक महाशय की कन्या की शिक्षिका का काम कर रही है। मल्लिक महाशय वृद्ध हो गये हैं। उनका अन्तर हृदय स्वभावना ही सरल और स्नेहपूर्ण है। श्रीमती मल्लिका भी मानो मूर्तिमती करुणा ही हैं। उनकी इस संसार में दो कन्यायें ही हैं। एक है षोड़श वर्षीया और दूसरी की आयु है दस वर्ष। इन्दुमती ने छोटी कन्या के शिक्षा का भार ग्रहण किया है। अब संसार में इन्दु को कोई भी कष्ट नहीं है। मल्लिक-दम्पति उसे अपनी कन्या के समान स्नेहपूर्ण भाव से देखते हैं।

परिचय पूछने पर इन्दु ने निस्संकोच भाव से कहा था— वह शैशव में ही मातृ-पितृ हीना हो गयी थी। आत्मीय स्वजन भी उसका कोई नहीं था। कार्यतः निराश्रय हो कर वह क्रिश्चियन मिशनरी की अनुग्रह-भिक्षा पर ही निर्भर थी। उन लोगों ने उसका छः वर्षों तक पालन किया था और शिक्षा प्रदान की इत्यादि। ठीक यही बात उसने मल्लिक पत्नी एवँ बालीगंज के अन्यान्य बंधु बांधवों से भी कही थी। आज से छः वर्ष पूर्व की हतभागिनी वही दुःखिनी इन्दु अपने अतीत अन्धकारपूर्ण जीवन को परिवर्तन कर इस नवीन आनन्दमय जीवन से भी किसी अन्य नवीन संसार में प्रवेश करना चाहती है। इसी लिये वह दृढ़-प्रतिज्ञ हो कर कलकत्ते आयी है। वह अच्छी तरह समझती थी कि अतीत जीवन में उसे अपना कहने के लिये जो जो लोग थे, निर्मम काल ने उनमें से प्रत्येक को एक एक करके छीन लिया था। अब इन्दु स्वाधीन और सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित

थी। वह कुछ और नवीनता चाहती थी। अतीतजीवन की प्रत्येक क्षुद्र-स्मृति को भी वह एक विकट दुस्स्वप्न की भाँति चित्त से निकाल फेंकना चाहती थी। वह अब स्वस्थ होकर एकान्त में सोचा करती थी कि उसके भाग्य-चक्र का दुरंत शनि-ग्रह कदाचित् अज्ञात ही किसी दिन उसकी राशि को त्याग कर चला गया है। वह समझती थी कि वर्तमान काल में इस पृथ्वी पर उसे वही दुःखिनी इन्दु कह कर पहचानने वाला शायद कोई भी नहीं है। इसी लिये वह इतनी स्वस्थ और आनन्दित थी।

यहाँ चौधरी परिवार के परिचय की आवश्यकता है। अम्बिका प्रसाद राय चौधरी कलकत्ते के एक सुप्रसिद्ध बैरिस्टर थे। एक वर्ष हुए कि वे मर गये। मल्लिक महाशय के घर के निकट ही उनका भी निवास-गृह था। मृत्यु के समय वे कई लाख नक़द रुपये अपनी विधवा पत्नी एवँ एक मात्र पुत्र के लिये छोड़ गये थे। श्रीमती चौधराना को तो हम लोगों ने पहले ही देख लिया है।

मिहिर की उम्र इस समय अट्ठाइस वर्ष की है, देखने में स्वास्थ्यवान पुरुष मालूम पड़ता है। वह कलकत्ते से बी० ए० पास करके विलायत गया था—वहाँ प्रायः एक वर्ष रह कर उस देश की जलवायु सह्य न होने के कारण दो वर्ष हुए घर लौट आया है। इस समय वह माता के पास ही रहता है। कभी कभी अपने व्यापार का निरीक्षण करने के लिये मोटर द्वारा कलकत्ता भी जाया करता है। मल्लिक महाशय मित्र-पुत्र मिहिर के प्रति बहुत प्रेम रखते हैं। उनके घर में उसके लिये सर्वत्र

मुक्त द्वार है। मल्लिक महाशय की बड़ी लड़की सेफालिका के साथ मिहिर का गाढ़ा प्रेम है।

एक दिन मिहिर ने न मालूम शुभ महूर्त में या अशुभ मुहूर्त्त सेफालिका के घर एक और नवागता मूर्ति देखी। उसी दिन सबों ने मिहिर में एक परिवर्त्तन देखा—और विशेष देखा सेफालिका ने।

मिहिर के दर्शन से इन्दु में भी भावान्तर लक्षित हुआ। इन्दु दैनिक काम-काज के बाद दो-तल्ले के ऊपर बरामदे मे बैठ कर शाम का कलेवा किया करती थी। मिहिर के सन्ध्या समय न आने से वह चंचल हो जाया करती थी, कार्य में भूल कर देती थी। कहने को कुछ है तो कह डालती थी कुछ और ही। मल्लिक दम्पति ने इसे विशेष लक्ष्य करके भी कभी कुछ बाधा न की। इस प्रकार दोनों की घनिष्ठता दिनोंदिन बढ़ने लगी।

अब मिहिर के घर सेफालिका के साथ इन्दु का भी सप्ताह में दो एक बार निमंत्रण होने लगा। क्रमशः मिहिर की माता ने भी स्वपुत्र के मनोभाव को जान लिया। और मल्लिक-दम्पति के साथ उसके प्रति विधान के उपाय की आलोचना करने लगी। किन्तु वे लोग इन्दु के साथ मिहिर के विवाह की ही चेष्टा में लगे थे।

इसी प्रकार छः मास बीत गये इस समय इन्दु का एक मात्र आधार था मिहिरचन्द्र, मिहिर की भी एक मात्र लालसा रहती इन्दुमती का दर्शन। दोनों ही के मन में इस समय यही भाव उत्पन्न हुआ करता है कि उनका मिलन अवश्यम्भावी

और निश्चित है। इन्दु अब मिहिर के साथ मल्लिक-दम्पति के सामने बैठ कर निस्संकोच भाव से वार्तालाप करने में किसी तरह की द्विविधा नहीं समझती थी। दोनों ने ही—दोनों को पहचान लिया था,—इन्दु समझती थी कि मिहिर को पाते ही उसके जीवन के सभी अभाव पूर्ण हो जाँयगे और मिहिर का विश्वास था कि इन्दु के समान सुन्दरी और सर्वगुण सम्पन्ना रमणी संसार में है ही नहीं, इन्दु के विना उसके जीवन में सुख आ ही नहीं सकता। किन्तु मल्लिक परिवार में एक ऐसा भी जीव था जो इन्दु और मिहिर के इस मिलन के ऊपर विष बरसाने को सदा उद्यत था!

× × ×

छठवाँ परिच्छेद

शिक्षिका

"A teacher who is attempting to teach, without inspiring the pupil with a desire to learn, is hammering on the cold iron"

—*Horace Mann.*

रतवर्ष के उत्तर में क्या है ?

बालिका ने ख़ूब सोच विचार कर उत्तर दिया—कुछ भी नहीं।

इन्दु गम्भीर होकर बोली—ख़ूब याद किया है ! अच्छा बताओ तो कानन में क्या फूलता है ? तत्क्षण उत्तर मिला—"काँटा, क्यों ठीक है न ?"

क्रोधित होकर इन्दु बोली तुम्हारा मूँड़ और हमारा सिर। कानन में कुसुम फूलता है। अभी थोड़ी देर भी नहीं हुई कि बात भूल गयी ? बालिका ने स्मरण करके उत्तर दिया—ओ ! वह बात पूछती हैं आप, मास्टर महाशया !

अब की इन्दु बोली—देखो अच्छी तरह सोच समझ कर बोलना भूल होने पर······अच्छा मान लो कि तुम्हें सात सन्देश

दिये गये हैं। पास ही एक पड़ोसी का लड़का बैठा है। यदि तुम्हें कहा जाय कि दस मिनट तक खा के बाक़ी जो बचे वह उस लड़के को दे देना। एक सन्देश खाने में तुम्हें दो मिनट लगें तो बताओ कि वह लड़का कितने संदेश पावेगा ?

बालिका ने चंचलता पूर्वक ईर्ष्या के साथ उत्तर दिया—एक भी नहीं दूँगी। जल्दी जल्दी सब खा जाऊँगी। इन्दु गम्भीर होकर आकाश की ओर देखने लगी। इस लड़की को, जो लड़कों का भी बाबा है, किस तरह सिखाया जाय !

इसी समय पीछे से किसी ने पुकारा—'मास्टर महाशया' ! प्रश्न में एक प्रकार का व्यंग भाव भरा था। इन्दु ने फिर कर देखा—सेफालिका ! सेफालिका ने विद्रुप कटाक्ष करके मृदु-हास्य से कहा—"वे आये हुए हैं, आप शीघ्र जावें।" इन्दु ने चकित होकर पूछा—"कौन" ?

"ओहो; कौन ? अब यह भी बतलाना पड़ेगा।" कहती हुई सेफालिका नीचे चली गयी। इन्दु नतमस्तक होकर सोचने लगी—मिहिर का नाम लेकर सेफालिका उसकी ओर विद्रुप कटाक्ष क्यों करती है ? उनके मिलन से सेफालिका को ईर्षा क्यों होती है ?

उस समय दश बज चुके थे। निर्मेघ आकाश में सूर्य चमक रहा था। रह रह कर दक्षिणी वायु बग़ीचे की वृक्ष लताओं में मर्मर शब्द करती एवँ शुष्क पत्रों को गिराती हुई बह रही थी

इन्दु के जाने में विलम्ब देखकर मिहिर स्वयँ ही जल्दी से ऊपर चला आया। इन्दु अप्रतिभ होकर मृदुहास्य पूर्वक बोली—

मैं तो आ ही रही थी।' छात्री-प्रवर मास्टर महाशया का इशारा पाते ही दौड़ कर बाहर चली गयी और मौक़ा पाकर उसने बाग़ का रास्ता लिया।

मिहिर ने इन्दु का हाथ पकड़ कर बैठाया और हँसते हुए कहा—"देखो इन्दु,—माँ ने कहा है कि यह वस्तु तुम स्वयं ही अपने हाथों ले जाकर पहना आओ। और तदनुसार मैं इसे ले आया हूँ।" यह कह कर मिहिर ने पॉकेट से एक मनोरम मुक्ताहार निकाल कर इन्दु को पहना दिया। इन्दु तुरन्त उसे गले से निकाल कर उसकी बनावट को देखने लगी। उसने पूछा—"क्या यह मेरे ही लिये है?"

मिहिर—ना, मेरी हृदयेश्वरी के लियेहै। इन्दु अप्रतिभ सी हँसने लगी। मिहिर ने कहा "इस समय नीचे चलो, मौसी देखेंगी। मिहिर मल्लिक महाशय की स्त्री को मौसी कहा करता था। इन्दु वह बहुमूल्य हार पहन कर सलज्ज भाव से मिहिर के पीछे चली।

मल्लिक—दम्पति इन्दु के गले से हार लेकर एक टक हो देखने लगे और मिहिर से पूछा—बेटा, इसमें कितना व्यय हुआ है? मिहिर ने कहा बम्बई से ऑर्डर देकर मंगाया है। इसमें कुल ढाई हज़ार रुपये लगे हैं। सेफ़ालिका हार की ओर वक्रदृष्टि डाल कर वहाँ से चली गयी!

अकस्मात् सदर दरवाज़े से कर्कश-स्वर में आवाज़ आयी—

"अर्जेन्ट टेलिग्राम है।"

"किसके नाम का टेलिग्राम है।"

उत्तर मिला—"मिहिर-चन्द्र राय चौधरी ?"

मिहिर ने त्रस्त होकर टेलिग्राम को लिया। अर्जेन्ट टेलि-ग्राम उसके नाम से किसने भेजा ? इसी बात से वह व्याकुल हो गया, किन्तु एक मुहूर्त में ही तार के मर्म को पाकर मिहिर आनन्द से फूल उठा। आश्चर्य ! आश्चर्य ! कहते हुए उसने तार को मल्लिक महाशय के समाने रख दिया। उसमें लिखा था—

गिरडीह

प्रातः सात बजे

मृत्यु का संवाद मिथ्या है। फ्रांस में बन्दी होगया था। गत दिवस गिरडीह को आया। आ रहा हूं—सन्ध्या को बालीगंज पहुँच जाऊँगा। स्टेशन पर मिलना।

नरेशचन्द्र राय

× × ×

तार का समाचार सुन कर इन्दु का मुख पाण्डु-वर्ण हो गया। हठात् गिरने से आत्म संयम करती हुई वह एक नज़दीक पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई। किन्तु किसी ने भी उसके परिवर्तन को नहीं देखा। मिहिर कहने लगा—'नरेश हमारा बाल-बन्धु है। जिस समय हम कलकत्ते में पढ़ते थे हम दोनों ही एक साथ रहते थे, दोनों के एक प्राण, एक चित्त था। सर्वोपरि उसने एक दिन हमारी जीवन-रक्षा की थी। रात्रि के समय एक दिन थियेटर से आते समय मैं गुण्डों के हाथ पड़ गया। उन लोगों ने मुझ पर छुरे के साथ आक्रमण किया। नरेश ने

मुझे वहीं बचाया था। उसके बाद जिस दिन उसकी मृत्यु का सम्वाद प्रकाशित हुआ था उस दिन मैंने आकर आप लोगों के यहाँ शोक प्रकाश किया था जो कदाचित् आप को याद ही होगा।"

मल्लिक महाशय बोल उठे—ओ! वही लड़का। ईश्वर को धन्यवाद है। मल्लिक-पत्नी ने कहा—बेटा, तुम्हें आनन्द ही आनन्द होगा। सन्ध्या समय वह आही रहा है। विवाह के समय यहाँ रहेगा न?

मिहिर—निश्चय ही रहेगा वह नहीं जानता कि हमारा विवाह होता है। मौसी, अच्छा इस समय मैं जाता हूँ। सन्ध्या समय उसके आते ही यहाँ ले आऊँगा। इन्दु के साथ उसकी बातें भी करा दूँगा।

मिहिर पैर बढ़ाता हुआ चला गया और इन्दु कम्पित देह से ऊपर जाकर अपने कमरे के द्वार बन्द कर पड़ रही!

सातवाँ परिच्छेद

विष की ज्वाला

"Hence forth I will bear affliction
Till it do cry out itself
Enough, enough,—and die."

—*Shakespeare*.

र्यास्त हो गया है। तरुणी के हृदय में अज्ञात प्रथम-प्रेम संचार की भाँति सुदूर आकाश में दो एक पीतवर्ण के मेघ धीर समीर में नीर बहाकर कहीं को चले जा रहे हैं। इन्दु उस समय शय्या के ऊपर पड़ी पड़ी न जाने क्या सोच रही थी। उसने आज बीमारी का बहाना कर न तो स्नान किया और न भोजन। उसकी देह काँप रही थी मुख पीला पड़ गया था आँखें रोते रोते रक्तवर्ण हो गई थीं और हृदय में मानो विष की ज्वाला दहक रही थी।

इन्दु के मन में यह बात उठती थी—विधाता की यह कैसी विडम्बना है। इन्दु ने नरेशचन्द्र का कदापि अनादर नहीं किया, इसके साथ उसने कभी विश्वासघात नहीं किया,

बिना दोष ही वह इसे छोड़ कर चला गया। इस पर भी इन्दु को चिरकाल तक उसकी स्मृति नहीं भूली, तब भी उसे यही आशा थी कि उसका स्वामी युद्ध से लौट आने पर भी उसे न मिल सकेगा, अब पुनर्मिलन नहीं होगा। किन्तु समाचार-पत्रों में उसकी मृत्यु का समाचार पढ़ कर इन्दु ने क्रमशः नरेश की समस्त स्मृतियाँ एक एक करके हृदय से बलात् निकाल फेंकी थीं। इन्दु ने इस समय नवीन जीवन आरम्भ किया है, उसने पुराने जीवन का त्याग कर एवँ नवीन गढ़ पर एक पूजा का मण्डप स्थापित किया है। उस रत्न-वेदिका के एकमात्र देवता हैं मिहिरचन्द्र। वहाँ अब दूसरे का स्थान नहीं हो सकता। इसी समय उसी आनन्द-बाज़ार के ऊपर सुनील निर्मेघ आकाश से एक वज्रपात क्यों हुआ? विधाता का यह कैसा अभिशाप है? इन्दु उसी अभिशाप को माथे पर लेगी, उसी वज्र को धारण करेगी। पर किसी की मजाल नहीं कि उसके आराध्य देवता की छाया भी स्पर्श कर सके। नरेश के आने पर इन्दु उससे स्पष्टतया कह देगी कि अब वह इन्दु का कोई नहीं रहा।

किन्तु ऐसा होने से क्या होगा? उससे तो अभिनय के एक अंक की यवनिका गिरेगी। उसके बाद? उसमें और भी तो अनेक दोष हैं। वह गत पाँच वर्षों से एक रहस्यमय जीवन व्यतीत करती आ रही है। उसका आधा जीवन तो मिथ्यापूर्ण है। ईश्वर ने उसी का दण्ड देने के लिये नरेश को फिर सम्मुख ला दिया है। नरेश के साथ इन्दु का साक्षात् आज अनिवार्य है। उसे देख कर क्या वह निष्ठुर पाषाण की भाँति चुप हो रहेगी?

आज इन्दु की समस्त शठता संसार की दृष्टि के सम्मुख प्रकाशित हो जायेगी। उसके बाद? उसके बाद मिहिर कदापि अपनी बंधु-वनिता का पाणिग्रहण करना स्वीकार नहीं करेगा। किन्तु मिहिर! मिहिर!! वह तो इन्दु का सर्वस्व है, इन्दु उसे छोड़ ही नहीं सकती!

इसी विष-चिन्ता में प्रायः संज्ञाहीन होकर हतभागिनी इन्दु शय्या पर ही पड़ी रही। उसने स्वप्न में देखा था कि—"उसका विवाह मिहिर के साथ हो गया। किन्तु जितनी देर तक विवाह-कर्म पूरा नहीं हुआ था उतनी देर तक उसने मिहिर की ओर न देखा जब उसने फिर कर देखा तो चमक उठी—यह मिहिर नहीं! नरेश है।" इन्दु की निद्रा भंग हुई और उसने सामने अपनी छात्री-प्रबर को सम्मुख खड़ा देखा।

बालिका बोली—"मास्टर महाशया, मिहिर भैया आये हैं और बुला रहे हैं।" इन्दु ने कम्पित हो कर पूछा—"क्या उनके साथ कोई और भी है?" बालिका ने हँस कर उत्तर दिया—'हाँ, हाँ, एक और बाबू भी हैं। उन्होंने मुझे एक तस्वीर दी है। आप उसे देखेगीं?" यह कह कर बालिका चित्र लाने के लिये दौड़ी। इन्दु काँपते काँपते उठ बैठी। उस समय रात्रि के आठ बजे थे।

इन्दु के आने में विलम्ब देख कर मल्लिक—पत्नी स्वयँ ऊपर गयीं और बोलीं—"छिः बेटी, इतनी लज्जा किसकी? आओ उसके साथ बातें न करोगी?"

कठोर होकर इन्दु धीरे धीरे चली।

नीचे की बैठक में बैठे सभी इन्दु की प्रतीक्षा कर रहे थे।

धीरे धीरे इन्दु नीचे आकर नरेश के सामने की कुर्सी पर बैठ गयी। बुरे समय में चारों आखें एक मुहूर्त्त के लिये एक हो गईं !

सहसा नरेशचन्द्र चञ्चल होकर एक अस्पष्ट शब्द बोला—वह केवल इन्दु को लक्ष्य कर के था—और किसी से उसका सम्बन्ध नहीं था। इन्दु नरेश को देखने के लिये बहुक्षण पूर्व से ही प्रस्तुत थी। इसी से वह स्थिर और गम्भीर दीख पड़ती थी। वह प्रत्येक मुहूर्त्त यही आशंका करती थी—'मालूम होता है, नरेश सभी बातें कह देगा।' किन्तु नरेश विस्मय विस्फारित नेत्रों से केवल इन्दु का आपाद मस्तक देखता था। नरेश का मुख मण्डल क्रमशः निष्प्रभ होने लगा, वाक्स्फूर्ति नहीं रही। नरेश के इस भावान्तर का लक्ष्य किया केवल एक व्यक्ति ने—वह थी—सेफालिका।

सेफालिका विरक्त होकर सोचने लगी—पृथ्वी के सभी मनुष्य इन्दु के मुख को देखते ही क्यों भूल जाते हैं ? इन हतभागों की आँखें क्या सिर में घुस गयी हैं ?

मिहिर अब तक मल्लिक महाशय के साथ वार्तालाप कर रहा था—इस बार नरेश के कान में उसने धीरे से कहा—"क्यों भाई कैसा देखा ? अच्छी लगती है तो ?" नरेश ने रुद्ध श्वास से उत्तर दिया—"बुरी नहीं है।"

कुछ देर के बाद सभी चलने लगे। मिहिर बोला—"आओ, इन्दु, तुम्हारे साथ नरेश की बातचीत करा दें।" इन्दु के मुँह में शब्द नहीं था, नरेश भी मौन था। दोनों ही यंत्र-चालित की भाँति सदर दरवाज़े पर्य्यन्त आये। विदा होते समय साहेबी

ढंग से नरेश बन्धु-पत्नी से साथ मिला कर मिहिर के साथ चल दिया। इन्दु निस्पन्द भाव से एक मुहूर्त्त वहीं खड़ी रह कर द्रुतपद से घर में चली गयी। अब तक इन्दु अपने होश हवास में नहीं थी, दो-चार पद अग्रसर हो कर अकस्मात् उसने अनुभव किया कि उसकी बन्द मुट्ठी के भीतर एक काग़ज़ है। विस्मित होकर बिजली की रोशनी में उसने उसे देखा। उसमें काँपते हुए हाथों से पेंसिल से लिखा था—

इन्दु,

आज रात्रि के बारह बजे सामने के बाग़ में मुझ से मिलना। ऐसा न करने से तुम्हारा अमङ्गल अनिवार्य है। इत्यलम्—

—नरेशचन्द्र

× × ×

आठवाँ परिच्छेद

अभिसार

"The iron tongue of midnight hath told twelve;
Lovers to bed; 't is almost fairy time."

—*Shakespeare.*

त्र पढ़ कर इन्दु को विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। वह अनुमान से समझती थी कि नरेश उससे क्या अनुरोध करेगा। ६ वर्ष पूर्व की इन्दुमती अब वह नहीं है। वही कीट दृष्टि, दुर्बल शरीर इस समय पूर्ण शत-दल में विकसित होकर हरे कानन के मध्य भाग में वसन्त की वायु के झोंके से हिल रहा है। इस समय देवकुमार भी उसका स्पर्श-भिखारी है। प्राण-हीन दुष्ट किरात की सामर्थ्य नहीं कि इस समय उसे निष्पेषित कर जाय। इन्दु विशेष रूप से समझती थी कि उसकी इस पूर्ण यौवन की उन्मादिनी सुषमाराशि ने नरेश के चित्त को उद्वेलित कर दिया है। नरेश इस समय नतजानु होकर इन्दु को कृपा-प्रार्थना करेगा, किन्तु इन्दु उसे नहीं देगी। वह इस समय बहुत आगे बढ़ गयी है। अब फिरने का समय नहीं रहा। तथापि इन्दु

नरेश के अनुरोध की रक्षा करेगी, अवश्य करेगी; क्योंकि उसमें उसका भी स्वार्थ है। उसे भी आज नतजानु होकर नरेश की दया-भिक्षा माँगनी होगी। यदि नरेश कल प्रभात समय समस्त बातें प्रकाशित कर दे, तब मिहिर के साथ इन्दु का मिलन तप्त मरु के ऊपर जल-माया की भाँति धीरे धीरे विलीन हो जायगा। ओह ! विधाता ने क्यों इस मंगल मुहूर्त्त में इस अनर्थ का संचार कर दिया ! क्या नरेश और दो दिन बाद नहीं आ सकता था ? सोचते सोचते इन्दु के चक्षु आरक्तिम हो उठे,—मन ही मन इन्दु नरेश की हत्या करने की कामना करने लगी !

उस समय रात्रि के दस बज चुके थे। नीचे भोजन का घण्टा बजा। इन्दु अनिच्छा से सामान्य आहार कर फिर चिन्ता में निमग्न हो गयी।

मल्लिक महाशय के द्वितल गृह के चारों ओर सुन्दर बाग़ था। उसके सर्व प्रान्त में उन्नत प्राचीर थी। प्राचीर के उत्तर-निकट ही कलकत्ते के किसी ज़मींदार का बगान था। वहाँ साधारणतः कोई नहीं रहता था। ज़मींदार बाबू महीने में प्रायः दो एक बार बन्धु बन्धुवों के साथ वहाँ शनिवार को जाया करते थे और फिर लौट जाते थे। दिन के समय हनुमानसिंह दरबान अपने साथियों को लेकर ताड़ी और शराब का सेवन करता था और रात्रि के पहरे का कार्य साधारणतः स्टेशन बाज़ार के समीप वाले सिंही साहेबा की भग्न-कुटीर से ही सम्पादित कर दिया करता था। इसी बगान में आकर नरेश के साथ इन्दु के मिलने का प्रबंध हुआ है। इसके पूर्व भी नरेश कईबार मिहिर

के घर आ चुका था और इस बगान की प्रायः समस्त बातें उसे मालूम थीं।

गिरजे की घड़ी में टन टन करके बारह बज गये। इन्दु प्रस्तुत थी, इस समय तक वह जगी हुई थी। मल्लिक के मकान के प्राणिमात्र निद्रा देवी की गोद में अचेत पड़े हुए थे। इन्दु दबे पाँव सदर दरवाज़े तक आयी। देखा तो वहाँ ताला बन्द था। तब धीरे धीरे बैठकख़ाना-गृह में प्रवेश किया। सर्वत्र घोर अन्धकार था। अकस्मात् एक कुर्सी से कुछ शब्द निकला। इन्दु कुछ देर शान्त होकर खड़ी होगयी और सावधानी से जंगले के निकट आकर उसे खोल कर बगान में निकल गयी।

बगान पार कर इन्दु राज-पथ पर आ गयी। चतुर्दिक कृष्ण चतुर्दशी का अंधकार माना जमात बाँध कर खड़ा था। सर्वत्र गम्भीर निस्तब्धता छायी थी। स्थान स्थान पर झिल्ली बोलती थी। रह रह कर दो एक उलूक-पक्षी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ उड़ कर जाते थे। गगन मण्डल में चन्द्रमा नहीं था, दो एक खण्ड काले मेघ इधर उधर उड़ते फिर रहे थे। मातृ-अङ्क में कौतुक परायणा चञ्चल बालिका की भाँति विद्युत की क्षीण रेखा सुदूर मेघ पुञ्ज में एक एक बार चमक कर निमेष में ही मलिन यवनिका के भीतर आत्म-गोपन कर रही थी।

धीरे धीरे आकर इन्दु उस बगान के फाटक पर खड़ी हो गयी। देखा द्वार उन्मुक्त है। किन्तु भीतर प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ। सम्मुख में दो बकुल वृक्ष प्रकाण्ड दैत्य की भाँति अंधकार में खड़े थे। और कहीं कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता था।

सहसा एक मनुष्य-मूर्ति ने आकर इन्दु को संकेत किया। इन्दु नीरव होकर उसी के पीछे पीछे चली। दैवयोग से वह था नरेशचन्द्र। दोनों ही आकर बगान के एक प्रान्त में एक शिला के ऊपर बैठ गये।

नरेश ने पुकारा—इन्दु ?

इन्दु ने कहा—क्या ?

धीरे से नरेश ने इन्दु का हाथ पकड़ लिया। वह उत्तप्त था, काँप रहा था। नरेश ने अच्छी तरह समझ लिया कि इन्दु के देह में मानो समस्त शिराओं से, विद्युत वेग में लक्ष रक्त स्रोत, छूट कर कहीं विद्रोह का सम्बाद सुनाने जा रहा है। नरेश ने पूछा—"इन्दु इस प्रकार क्यों काँपती हो ?" इन्दु ने कोमल स्वर में उत्तर दिया—"नहीं तो ?" पर दिल में आया—नरेश पश्चिम में जाकर क्या जादू सीख आया है ? उसके कर-स्पर्श से ही आज विद्रोहिणी इन्दु की यह क्या अवस्था हो गयी ? उसके मन में तो था 'नरेश का मुण्डपात' उसका वही दुर्ज्जय अभिमान, उसकी कठोरता, मुँह पर नरेश के प्रश्न का कर्कश उत्तर देने के लिये दृढ़ संकल्प, यह सब क्या हो गये—ये काँच की चूड़ियों की भाँति कैसे टूट गये !

नरेश बोला—इन्दु ! गत जीवन में मैंने अनेक पाप किये हैं। बिना दोष ही तुम्हारे सिर कितनी लाञ्छनाएँ मढ़ी हैं। उन्हीं समस्त पापों के कठोर प्रायश्चित्त के लिये मैं पश्चिम गया था। युद्धक्षेत्र में धनुष-स्थित शर पर खड़े होकर तलवार के मुख में तप्त शोणित की आहुति देकर समस्त पापों का प्रायश्चित्त किया

है। अब मुझे क्षमा कर दो इन्दु! बोलो क्या मुझे ग्रहण करोगी? इन्दु कुछ भी न बोल सकी, काँपते काँपते नरेश के पैर के पास बैठ गयी। नरेश फिर बोला—"इस प्रकार क्यों हो गयी इन्दु, बातें कहो, डर किस बात का? मिहिर के द्वारा तुम्हारे अतीत जीवन की समस्त बातें सुनी हैं, किन्तु उसने तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है।" इन्दु बोली—पर उसका गला काँप रहा था, तब क्या तुम ने सुना है कि मैं धर्म त्याग कर ईसाई हो गई। क्या करूँ, कहीं भी आश्रय न मिलने के कारण ऐसा किया है। वह धर्म के लिये नहीं क्योंकि मैं तो ईश्वर को पहिचानती ही नहीं, वह भी एक प्रकार है, यह कहने से भी मेरा विश्वास नहीं। पर बहुत दिनों तक उनके साथ रह रह कर मैं भी अपना गवाँ कर दूसरे की हो गयी हूँ। मैं तो हूँ क्रिश्चियन और तुम हो हिन्दू। तुम मुझे कैसे ग्रहण करोगे? नरेश हँस कर बोला—यह क्या कहती हो इन्दु? मैं भी तो मरा मनुष्य हूँ। मेरी अब जाति क्या? पृथ्वी की दृष्टि में एक बार मरा था, समाज की दृष्टि में एक बार और मरूँगा। तुम्हें लेकर समाज का त्याग करना होगा तो राजपथ के भिखारियों के दल में मिल जाऊँगा।" कम्पित स्वर, वाष्प-जड़ित रुद्ध कण्ठ से इन्दु बोली—"ऐ हैं? क्या तुम ऐसा कर सकते हो?" नरेश ने उत्तर दिया—"हाँ अवश्य कर सकता हूँ, बोलो—प्रतिज्ञा करो तो मैं अभी मिहिर को जगा कर सब बातें कह दूँ—बोलो।"

इन्दु दोनों हाथों से नरेश के पैरों को पकड़ कर बैठ गयी। नरेश को मालूम हुआ कि उसके पैरों पर दो बूँद गरम आँसू पड़े

हैं। इन्दु ने गला साफ़ करके कहा—"नहीं, अभी नहीं। कुछ समय—कुछ समय और ठहरो मुझे कुछ विचार कर लेने दो, ज़रा स्थिर हो लेने दो, न जाने मेरे हृदय में एक प्रकार के विद्युतवेग से क्यों धड़कन हो रही है। मैं उसे—मैं उसे—ओ!—" नरेश ने बैठे बैठे ही इन्दु के अश्रु भरे मुख को अपने वक्ष की ओर खींच कर कहा—"इस तरह तुम क्यों कर रही हो, इन्दु? अच्छा, इस समय मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम उसे कितनी प्रिय हो।"

"कौन है—वह—वही वही?" इन्दु एकाएक भीत कण्ठ से बोलती हुई उठ खड़ी हो गयी और सम्मुख के अन्धकार की ओर देखने लगी। "कहाँ, कोई है?" कहते हुए नरेश भी उठ खड़ा हुआ किन्तु कहीं कुछ भी नहीं देख पाया। इन्दु बोली—"कोई आदमी इस पेड़ की आड़ से उस झाड़ी की ओर निकल गया है—नहीं अब चलो, मुझे डर लगता है।" "कौन? अरी जा, बाग़ का दरबान होगा" नरेश ने उत्तर दिया। "नहीं चलो मुझे भय मालुम होता है। बोध होता है, कोई और ही है। आओ।" इन्दु यह कह कर नरेश का हाथ पकड़ कर खींचने लगी। इन्दु! वह है छाया और तुम्हारे मन का भय, (कुछ नीरव होकर) हाँ, तुम इस समय जाओ, किसके मन में कैसा भाव उत्पन्न होगा। मैं कल सवेरे तुम से फिर मिलूँगी।" कहते हुए दोनों ही बगान के बाहर आये। इन्दु बोली—"तुम भी घर जाओ। मेरी बात रखो, मुझे बड़ा ही भय लगता है। न जाने वह कौन है? नरेश ने कहा—"अच्छा जाऊँगा।"

कम्पितपद से इन्दु ने धीरे धीरे मल्लिक-गृह में प्रवेश किया किन्तु नरेश घर नहीं गया। लौटकर पुनः उसने बगान में प्रवेश किया।

× × ×

प्रभात होगया है। किन्तु अब तक भी मल्लिक महाशय के घर का दरवाज़ा नहीं खुला है। अचानक बाहर से कोई। द्वार पर ख़ूब ज़ोरके साथ धक्का देने लगा। फिर एक बार, क्षण भर में दो बार और। भीतर से बेहरा ने पूछा—"कौन है ?" कर्कश स्वर में उत्तर मिला—"जल्दी खोल। साहेब को बुला।" मल्लिक महाशय इस समय जगे हुए थे। समाचार गुरुतर समझ कर वे जल्दी ही नीचे आये। बेहरा ने दरवाज़ा खोल दिया। देखा कि सामने एक वस्त्र पहने मिहिर खड़ा है, पैर में जूता नहीं है, बदन में कुर्ता नहीं है, चक्षु रक्त वर्ण है, ओष्ठधर कम्पित है। मल्लिक महाशय उसे इस भेष में देखते ही घबड़ा उठे!

मिहिर ने उत्तेजित कण्ठ से कहा—"जल्दी ही आइये, हमारा तो सर्वनाश हो गया नरेश की कल रात्रि के समय किसी ने हत्या कर दी।"

"क्या! क्या!" कहते हुए कम्पित देह मल्लिक महाशय ज़मीन पर गिर पड़े। क्षण भर में ही मकान के सभी लोग वहाँ आकर जमा हो गये। मिहिर ने कहा—"कल रात्रि के प्रायः १० बजे नरेश ने मुझे कहा कि उसे किसी मित्र से मिलने जाना है। मैंने पूछा कि कहाँ? उसने उत्तर दिया कि पास ही के मठ में। मैंने बहुत मना किया, साथ में आदमी देना चाहा, किन्तु उसने

कुछ नहीं सुना। अकेले ही चला गया।"—यह कहते हुए मिहिर काँपते काँपते नीचे बैठ गया। सबों ने पूछा—"उसके बाद? उसके बाद?"

मिहिर फिर बोला—"उसके बाद मैं बहुत देर तक उसकी प्रतीक्षा में बैठे रहने के बाद सो गया। सवेरे दरवाज़े पर जाते ही सुना कि इस बगान का दरवान चीत्कार कर रहा है! व्यस्तभाव से उठ कर सुना—एक बाबू को उसकी वाटिका में किसी ने हत्या कर दी है। जल्दी ही वहाँ जाकर देखा कि—वह है नरेशचन्द्र!" यह कह कर मिहिर रुक गया और उत्तेजित होकर बोला—"हत्याकारी का पता लगाये बिना हमारा जीवन वृथा है। मैं उसे फाँसी दिलाऊँगा, आप लोग आइये, इस समय पुलिस आयी हुई है।" यह कह कर मिहिर पगले की भाँति चल पड़ा। पीछे से मल्लिक-गृह के सभी लोग जाने लगे।

बगान के मध्य में एक द्वितल भव्य भवन है। उसके पीछे एक आँवले का बड़ा वृक्ष है। उसके पास में ही एक कूप है और कूप के अनति दूर माधवी लता का एक छोटा सा कुञ्ज है। सबों ने जाकर देखा कि उसके निकट ही नरेश का छिन्न देह पड़ा हुआ है। चतुर्दिक तप्त रक्त जमा हो गया है। उसकी ग्रीवा का पश्चात्-भाग ही छिन्न है। देखने से मालूम होता था कि हतभागे को किसी ने चुपचाप पीछे से ही तीक्ष्ण अस्त्र से आघात किया है। उस प्रेतस्थान के चतुर्दिक एक से अधिक व्यक्ति के पद-चिन्ह अब भी स्पष्ट दीखते थे।

इन्दु वहीं खड़ी थी। एकाएक संज्ञाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ी।

'यह क्या ! यह क्या !!' कहते हुए मल्लिक महाशय ने इन्दु को पकड़ लिया। मिहिर सेफालिका की सहायता से निकट-वर्ती गृह में ले जाकर उसकी सेवा सुश्रुषा करने लगा। कुछ ही देर में पुलिस आकर मृत देह लेकर चली गयी। सन्देह वश हनुमानसिंह दरवान भी पकड़ लिया गया!

× × ×

इन्दु के साथ मिहर का जो विवाह-दिन निश्चित् था वह टल गया। उसके पन्द्रह दिन बाद फिर शुभ विवाह का लग्न ठीक हुआ। इधर इन्दु का शरीर क्षीण हो कर टूटा जाता था। मिहिर की माता भी कई दिनों से अस्वस्थ थीं। विशेषतः इन्दु अब ज़िद करने लगी कि 'बालीगंज में नहीं रहूँगी।'

वाध्य होकर मिहिर को पश्चिम जाने की तैयारी करनी पड़ी। कलकत्ते के दो आदमियों के ऊपर हत्या की खोज करने का भार सौंप दिया गया।

× ×
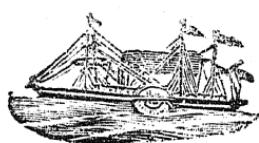
नवाँ परिच्छेद

आत्म-प्रकाश

"Base envy withers at another's joy,
And hates that excellence it cannot reach,"

—*Thomson*.

ल्लिक स्त्री ने कहा "कई दिनों से सेफा-लिका की तबीयत बड़ी ही ख़राब रहती है"

मल्लिकमहाशय कुछ जवाब न देकर वर्मा-सिगरेट सुलगा कर गम्भीरभाव से धूम्रपान करने लगे।

मल्लिक-पत्नी फिर बोली—"इन्दु के यहाँ से चले जाने के बाद से ही न जाने सेफालिका को क्या हो गया है। किसी के साथ कुछ बात नहीं करती, बुलाने से विरक्त हो जाती है, वेश-भूषा की ओर लक्ष्य ही नहीं रखती, सर्वदा बैठे बैठे न जाने क्या सोचा करती है।"

"इन्दु के साथ ख़ूब हेलमेल था। इसी से उसके चले जाने से हठात् अकेली पड़ गई है। क्या करें, पराये की लड़की को तो

हम लोग अधिक दिनों तक अपने घर में रख भी नहीं सकते।"
कहते हुये बैरिस्टर साहब बगान की ओर चले गये।

सहसा सेफालिका पार्श्व-गृह का पर्दा उठा कर उसी घर में आ गई। उसकी माता उसकी इस उग्र मूर्ति को देख कर विस्मित हो गयी। सस्नेह निकट बुलाया और बोली—"यह क्या बेटी! छिः, दिन-रात मुँह उदास किये ही रहेगी? केवल तू ही क्यों—गृह के पशु-पक्षी भी इन्दु के अभाव का अनुभव करते हैं—लड़की मानों रूपगुण में सरस्वती के सामान थी।"

सेफालिका से अब और न सहा गया। अग्नि के उत्ताप लगने से जैसे विस्फोटक पदार्थ जल उठता है, सेफालिका का समस्त शरीर ठीक उसी प्रकार जल उठा। उसने उत्तर दिया—"माँ, कहे देती हूँ, तुम इन्दु और मिहिर की बातें सुना कर मुझे मत जलाओ! मैं उनसे घृणा करती हूँ।" यह कह कर सेफालिका क्रोध से काँपने लगी। उसकी माता अवाक् रह गयी।

सेफालिका फिर बोली—"बाबू जी को और कोई अच्छा मास्टर ही नहीं मिला। कहाँ के किस रास्ते के कूड़े को लाकर घर में टिका रखा था।"

विस्मित होकर मल्लिक-पत्नी बोलीं—"यह क्या बात कहती हो बेटी! तुम्हारे मुख से तो इन्दु के विरुद्ध कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी। इतनी ही देर में क्या बात हो गई, कहो तो सुनें।"

सेफालिका उस समय क्रोध और अभिमान से अश्रुविसर्जन कर रही थी। माता ने उठ कर सस्नेह उसके कण्ठ पर हाथ रखा। माता का हाथ हटाती हुई सेफालिका कर्कश स्वर से बोली—

"तुम लोगों के मुँह में हमेशा इन्दु का ही गुण रहता है। दुनियाँ में और किसी को देखा ही नहीं है। उसी हतभागिनी ने तो मिहिर को हम से छीन कर पराया कर दिया। उसे देखने के बाद से मिहिर ने एक दिन भी हमारे साथ मीठी बातें नहीं कीं……" कहते कहते सेफालिका झपट कर ऊपर चली गयी और जा कर अपने कमरे का द्वार उसने बन्द कर लिया। घर से बाहर निकलते समय कुत्ते को इस प्रकार ठुकराया कि वह पाँच छः हाथ दूर जा गिरा।

मल्लिक-पत्नी अवाक् सी रह गयी। कुर्सी पर बैठ कर सोचने लगी—"मिहिर ने साथ छोड़ कर क्या अनिष्ट नहीं किया है? एक दिन के लिये भी तो मैं नहीं जान सकी कि सेफालिका का उस पर इतना प्रेम है।"

सेफालिका शय्या पर पड़ कर सोचने लगी—"अकस्मात् क्रोधावेश में मैंने हृदय की बात माता के सामने प्रकाशित कर दी; ऐसा करके मैंने भारी लड़कपन किया है।"

जो होना था, होगया। किन्तु आज पन्द्रह दिनों से सेफालिका जिस आग से भीतर ही भीतर जलती थी उसे निवारण करना सहज नहीं था। इन्दु ने उसके मुख का ग्रास निकाल लिया है। वह भी उसका सर्वनाश करेगी। कैसे करेगी, मालूम नहीं। तब सोच विचार कर उपाय निकालना होगा। वह मिहिर के शान्ति-राज्य में आग लगावेगी!

बहुत दिनों से सेफालिका इन्दु पर सन्देह करती आ रही है। अपने कार्यों में मानो वह एक रहस्यमयी मूर्ति है। उसके अतीत

जीवन में मानो कुछ गूढ़ तत्व निहित है। जो कुछ उसने उन लोगों से कहा है वह मानो सभी मिथ्या के आवरण में खचित है। इन्दु जिस समय अकेली रहती, उस समय घर का दरवाज़ा बन्द कर न जाने क्या करती रहती। एक दिन सेफालिका ने उचक कर देखा कि इन्दु बैठी हुई किसी के पत्रों को पढ़ रही थी। एक रात्रि को सेफालिका ने दरवाज़े के छेद से देखा कि—वह मानो किसी के फ़ोटो की भाँति किसी वस्तु को निविष्ट चित्त से देख रही थी—इत्यादि, इत्यादि। इसी प्रकार की भावनाओं के बाद हठात् सेफालिका के मस्तिष्क में एक विचार उपत्न हुआ—इन्दु के परित्यक्त-गृह की वह एक बार परीक्षा करेगी। उसी समय वह कुंजी लेकर गयी और इन्दु के वास-गृह का द्वार खोला।

सेफालिका ने देखा—भीतर शून्य पलङ्ग पड़ा है। इधर उधर काग़ज़ के टुकड़े बिखरे हुए हैं। दीवार पर दो लकड़ी के रेक और कतिपय कीलें हैं। और कहीं कुछ नहीं है। दैवात् विवाह के दो दिन पूर्व ही इन्दु का सारा सामान मिहिर के घर चलागया था।

सेफालिका मनोयोग पूर्वक काग़ज़ पत्रों को पढ़ने लगी। किन्तु कहीं भी कुछ नहीं मिला। उसमें अधिकांश उसकी छोटी बहिन के हाथ की लिखी हुई हस्तलिपियाँ थीं और दो एक में धोबी को दिये हुये कपड़ों का हिसाब था अथवा इसी प्रकार की अन्य कोई व्यर्थ की बात। हताश होकर सेफालिका पलङ्ग के ऊपर बैठ गई और सोचने लगी—"हत-भागिनी एक चिट्ठी-पत्री भी नहीं छोड़ गयी।"

निराश होकर बाहर आने के समय दरवाज़े के चौखट के नीचे की धुरी के बीच की किसी उज्वल वस्तु ने उसकी दृष्टि को आकर्षित किया। जल्दी से उसे हाथ से उठा कर देखा कि वह एक सोने की अँगूठी है। उसे पाकर सेफालिका पहले आश्चर्य्यान्वित हुई। उसे उसने कभी भी इन्दु की अँगुली में नहीं देखा था। तब यह किस की अँगूठी थी? देखते देखते उसमें दो अक्षर खुदे हुए दीख पड़े। उस पर अंग्रेज़ी में लिखा था—'एन० सी०' और उसके पास ही था '१९१४'।

पढ़ते ही अकस्मात् सेफालिका का मुख आरक्तिम हो उठा। वह सोचने लगी कि यह निश्चय ही 'एन० सी०' नामधारी कोई इन्दु का प्रणयी होगा और उसी का दिया हुआ यह उपहार होगा। किन्तु यह "एन० सी०" कौन है? बहुत देर तक सोचने विचारने पर भी सेफालिका कुछ स्थिर नहीं कर सकी। अंत में स्थिर किया—"एन० सी०" कोई ही क्यों न हो इस नाम का कोई पुरुष विशेष अवश्य है। मिहिर जब इन्दु को पश्चिम से साथ ले आवेंगे तब सेफालिका उसे लेकर मिहिर के सामने रखेगी। उसका मन्तव्य इसे दिखा कर मिहिर के मन में इन्दु के प्रति सन्देह उत्पन्न कराना था। सेफालिका ने परम यत्नपूर्वक अँगूठी को बाँध कर रख लिया।

दसवाँ परिच्छेद

समुद्र के तट पर

"Roll on, thou deep and dark blue Ocean—roll!
Ten thousand fleets sweep over thee in vain;
Man marks the earth with ruin,—his control
Stops with the shore."

—*Byron.*

मने सुनील जलधि है। उसकी सीमा नहीं है, अन्त नहीं है। अम्बुधि का सुदूर प्रांत क्रमशः अस्पष्ट होकर मनुष्यों के उच्छ्वसित आशा की भाँति अनन्त शून्य में कहीं विलीन हो गया है। दूरदिगन्त के महा-राज्य में महासागर की अन्तिम नील-रेखा एक होकर मिल गयी है।

पुरी के उपकूल में विस्तीर्ण समुद्र तीर है। किनारे पर तरङ्ग के ऊपर तरङ्ग आकर महासिंधु की विजयी सेना की भाँति गर्ज्जन करके चली जाती है। अपराह्न का समय है। एक सुदीर्घ काष्टासन पर मिहिरचन्द्र और इन्दुमती बैठे निर्वाक-विस्मय में जड़-प्रकृति की उस रङ्ग-क्रीड़ा को देख रहे थे।

प्रायः एक मास हुआ जब वे लोग माँ को लेकर पुरी आये। इन्दु का स्वास्थ्य इस समय बहुत अच्छा है। उसके हृदय में आनन्द और बदन में हँसी फिर लौट आयी है। उस समय इन्दु मिहिर के साथ कितनी ही बातें करती है, संध्या समय हारमोनियम लेकर कैसे आलापती है, मध्याह्न में अपनी सास के पके केश को बाँध कर हाथ पैर दबाती है। किन्तु अब भी समय समय अकस्मात् खिन्न होकर न जाने वह क्या सोचने लगती है, जिसे देख कर मिहिर डर जाता है। पूछने पर कहती है—"बालीगंज की वही नर-हत्या की बात सोचती हूँ, मैं वहाँ नहीं जाऊँगी, चलो हम लोग यहीं घर बना कर रहें।" मिहिर हँस कर कहता है—"बिलकुल बच्ची सी है, इस एक मास के कलकत्ता छोड़ कर आने में जानती हो हमारे व्यवसाय में कितनी क्षति हुई है ?"

इन्दु ने बालीगंज जाने की बात सुनते ही मुख भारी कर लिया। आज सवेरे कलकत्ते से मैनेजर ने तार भेजा है—"आप शीघ्र चले आइये, नहीं तो कई तालुके हाथ से निकले जा रहे हैं।" साथ ही खुफ़िया पुलिस के यहाँ से भी एक चिट्ठी आयी है, उसमें लिखा है—"उस रात्रि को बाबू नरेशचन्द्र जिसके साथ मिलने गये थे, उस पर कई प्रकार का सन्देह हो रहा है। रहस्य गुरुतर है। आपके इस समय यहाँ लौट आने में ही कुशल है।" मिहिर से अब अधिक नहीं रहा जा सकता, वह कल ही प्रस्थान करेगा। इसी लिये दोनों ही महासागर की ओर परिभ्रमण करने आये हैं। मिहिर था चिन्तामय और इन्दु

थी किन्तु किसी की भी ज़बान नहीं हिलती थी—दोनों ही न जाने क्या सोचते थे।

मिहिर के साथ विवाह होने के बाद इन्दु का एक दिन भी इस प्रकार नहीं बीता था। किसी किसी दिन अनन्तः दिन में दो एक बार सोचती कि—"आज अपने जीवन का समस्त रहस्य उनके निकट खोल दूँगी।" पर उससे वह भी नहीं हो सकता था। यदि नरेश की अकाल मृत्यु नहीं हुई होती तो इन्दु सारी बातें कह कर मिहिर से क्षमा पा सकती थी, पर अब उसके लिए भी समय नहीं रहा। बन्धु-शोक मिहिर को बड़ा ही प्रबल हो उठा था। मिहिर की बात तो दूर, एक बालक भी यदि समस्त रहस्य जानता तो उसी दम यह अनुमान कर लेता कि "इन्दु ही नरेश की हत्याकारिणी है।" क्योंकि नरेश की हत्या केवल वही कर सकता है जिसकी स्वार्थ-सिद्धि में उसकी वर्त-मानता बाधक होती हो। और वह व्यक्ति इन्दु अथवा मिहिर के अतिरिक्त हो ही कौन सकता है? उस हत्या दिवस के दो एक दिन बाद ही इन्दु के चित्त में भी यही भावना उठने लगी—"यदि उसके साथ साक्षात् होने के बाद नरेश ने समस्त बातें मिहिर से कह दी हों, अथवा उसी रात मिहिर ने गुप्त रूप से नरेश के पीछे आकर छिपे छिपे उन दोनों की बातें सुन ली हों, तब यदि पैशाचिक स्वार्थवश, इन्दु को पाने के मार्ग से मिहिर नरेश को हटाया चाहता हो, तो क्या मिहिर ही…? नहीं, नहीं!—इन्दु ने दोनों हाथों से वक्षस्थल को दबा लिया। इन्दु मिहिर को अच्छी तरह से जानती है, उसमें देवता का हृदय है। वह नर-हत्या

नहीं कर सकता। तब किसने ऐसा किया? पृथ्वी में तो नरेश का अब कोई शत्रु या मित्र रहा ही नहीं है। वह कोई ही क्यों न हो, इन्दु यदि मिहिर से अब भी सारी बातें खोल कर कह दे तो मिहिर किसी प्रकार भी विश्वास नहीं कर सकता कि शठतामयी स्वामि-त्यागिनी इन्दु ही उसके बन्धु की हत्या-कारिणी नहीं है। विशेषतः इन्दु ही उस रात को नरेश के साथ मिलने गयी थी। तब तो मिहिर इन्दु को काल-साँप की भाँति दूर हटा देगा। पुरुष प्रेम बड़ा ही चंचल होता है, उसका विश्वास कैसे किया जाय! उस समय इन्दु की क्या दशा होगी? मिहिर यदि दया पूर्वक उसे फाँसी न दिलावे तथापि उसे नर-घातिनी कलङ्किनी होने के कारण पृथ्वी में कहीं भी स्थान नहीं मिलेगा।"

"किन्तु इस समय न कहने पर भी यदि यह गुप्त रहस्य किसी प्रकार प्रकाशित हो जाय! खुफ़िया ने लिखा ही है कि 'जिस व्यक्ति के साथ नरेश साक्षात् करने के लिये गया था, उसका सन्धान मिल रहा है।' तब क्या उन लोगों ने इन्दु का नाम भी जान लिया है! हैं! तो उसे फाँसी पर लटकना पड़ेगा? तब तो मिहिर भी चला जायगा—सब कुछ चला जायगा! इन्दु दिन भर यही चिन्ता करती थी, किन्तु जब कोई भी सिद्धान्त निश्चित नहीं कर सकती तो उस समय शय्या पर मुँह छिपाकर रोने लगती थी। वह मिहिर को अत्यधिक प्रेम से चाहती थी, उसे छोड़ कर वह मर भी नहीं सकती थी! वही मिहिर यदि उसका त्याग कर दे तब!!"

यकायक मिहिर इन्दु का हाथ पकड़ कर उठ खड़ा हुआ। बोला—"चलो, रात होगयी—घर लौट चलें।"

ग्यारहवाँ परिच्छेद

किसकी फ़ोटो है ?

"Suspicions amongst thoughts are like bats amongst birds, they ever fly by twilight."

—*Bacon.*

फालिका बैठक-ख़ाना में बैठी हुई समाचार पत्र पढ़ रही थी, मल्लिक दम्पति पास ही बैठ कर सुन रहे थे। आज कागज़ में नाना प्रकार के आनन्द के गल्प छपे थे, जिसे सुन सुन कर मल्लिक-पत्नी का हँसते हँसते दम फूल गया था। सेफालिका पढ़ रही थी—"आजकल कलकत्ते में नवीन ढंग की ठगी जारी हो गयी है। गत दिवस एमहर्स्ट स्ट्रीट से भूता नामक एक अष्ट-वर्षीय बालक जा रहा था। उस समय दस बजे थे। अकस्मात् भद्रवेषधारी एक वयस्क पुरुष ने आकर पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रखा। बालक चौंक कर खड़ा हो गया—कारण, उसने उसे कभी नहीं देखा था। उसी समय उस पुरुष ने बालक का चिबुक स्पर्श करके पूछा—"क्यों रे बच्चे, पहचानता नहीं क्या? मैं

तुम्हारा काका हूँ। तुम्हारे घर सब कुशल है?" बालक अवाक् होकर उसके मुँह की ओर ताकने लगा। उसी दम पुरुष बोला—"कैसा मूर्ख लड़का है, इतने ही में भूल गया।" 'मूर्ख' उपाधि पाते ही बालक कुछ अप्रतिभ हो गया। क्योंकि मुहल्ले के सभी छोटे छोटे लड़कों में चतुर नाम से उसकी खासी प्रतिष्ठा थी। भाव समझ कर उस आदमी ने फिर पूछा—'क्यों रे, अब याद आया।' बालक ने सिर हिला कर कहा "हूँ" वह बोला—'बहुत अच्छा। मिठाई खाना चाहते हो?' बालक ने मिठाई खाने की आशा से एक बार कृतज्ञता की हँसी हँस कर नवीन आत्मीय का हाथ पकड़ लिया।

उस आदमी ने बहू-बाज़ार की मोड़ पर आकर पूछा—"अरे, अरे, तुम्हारा नाम तो मैं भूल ही गया।" बालक ने उत्तर दिया—'क्यों भूता' 'हाँ, हाँ भूता' याद आया—कहते कहते वह पुरुष उसे लेकर निकटस्थ हलवाई की दूकान में प्रवेश करते हुए बोला—"दो सेर रसगुल्ला और दो सेर संदेश अलग अलग देना तो।" हलवाई अभ्यस्त होकर मिठाई तौलने लगा। भूता आनन्द से खूब हँसने लगा। तौलना शेष हो जाने पर उस पुरुष ने पूछा—'कितना दाम होगा?' हलवाई ने हिसाब करके कहा—"जी, साढ़े तीन रुपये हुए, पर आप दो आने कम ही दे दीजियेगा।" पॉकेट में हाथ डालते हुये भूता के काका ने कहा—'दस रुपये का फिरता दे दो।" हलवाई ने मिठाई का दाम काट कर छः रुपये दस आने उस आदमी के हाथ पर गिन दिये। तब संदेश की हांडी भूता के हाथ में देकर बोला—यहाँ बैठो

तो बेटा, मैं पास के ही बाज़ार से ज़रा चटनी ले आऊँ कहीं जाना मत। यह कह कर वह रसगुल्ला पात्र और रुपया लेकर बाहर चला गया पर हलवाई को नोट नहीं दिया! उस समय दूकानदार कुछ इधर उधर करके भी भद्र पुरुष को, कुछ भी कहने का साहस नहीं कर सका। बोल भी वह कैसे सकता—अपने ही लड़के को छोड़ कर वह भद्र पुरुष चला गया।

जो हो, घण्टे के बाद घण्टा बीत गया पर भूता का काका नहीं आया। जब पुलिस ने आकर उसका हाथ पकड़ा तब वह बेचारा "भाँय, भाँय" करके रोने लगा।

ठगी की कहानी सुन कर सेफालिका की माता हँस हँस कर व्याकुल होगयी। किन्तु वृद्ध बैरिस्टर बर्मा चुरुट को मुख में देकर गम्भीर भाव से सोचने लगे—यदि उसे पकड़ा जाय तो किस धारा से कितने वर्ष की उसकी सज़ा होगी? और यदि वही आवे और आत्म-समर्पण के लिये नियुक्त करे तो क़ानून के किस तर्क से उसे जाल मुक्त किया जा सकता है।

इसी समय ब्रह्मानन्द आकर मल्लिक महाशय और उनकी पत्नी को प्रणाम कर सामने खड़ा हो गया। "क्यों कहाँ से, कब आये, घर पर कुशल तो है?" आदि अनेक प्रश्न एक साथ ही मल्लिक-दम्पति और सेफालिका ने किये। ब्रह्मानन्द यथासम्भव सब का उत्तर देकर निकटस्थ कुर्सी पर बैठ गया।

ब्रह्मानन्द मल्लिक महाशय की दूर सम्पर्कीया साली का लड़का है। इसका घर गिरडीह में है। इस समय नागपुर में पढ़ता है। सभी समाचार पूछ-पाछकर मल्लिक-दम्पति स्नान

के लिये चले गये और ब्रह्मानन्द और सेफालिका में बातें होने लगीं।

अकस्मात् प्राचीर के एक कोने में किसी के एक लम्बे फ़ोटो पर ब्रह्मानन्द की दृष्टि पड़ी। वह खड़ा होकर उसे देखने लगा। और कौतूहल वश व्यग्रभाव से उसने सेफालिका से पूछा—यह फ़ोटो किसकी है?

जितनी ही उत्सुकता से वह फ़ोटो देखता था उतना ही अधिक सेफालिका जलभुन कर ख़ाक होती जा रही थी। मन ही मन कहती थी—"क्या दुनिया के सभी अभागों की आँखें कपार में ही धँस गई हैं कि इन्दु का चित्र देखते ही व्याकुल हो उठते हैं।"

व्यस्त होकर फिर ब्रह्मानन्द ने पूछा—'सेफालिका यह फ़ोटो किसका है?' सेफालिका ने उदास होकर कहा—"तुम्हारा मन उसमें किस प्रकार लग गया।" ब्रह्मानन्द कुछ अप्रतिभ हो कर बोला—"छिः, उसके लिये नहीं तुम्हारे घर में यह फ़ोटो किसका हो सकता है? यह मैं नहीं समझ सकता। इसी लिये पूछ रहा हूँ।"

"सेफालिका ने कहा कि वे हमारी शिक्षिका हैं। प्रायः छः महीनों तक हमारे ही यहाँ थीं। एक मास के लगभग हुआ उनका विवाह मिहिर बाबू के साथ हो गया है।"

मिहिर के साथ ब्रह्मानन्द की साधारण जान पहचान थी। वह चौंक कर बोला—"मिहिर बाबू के साथ विवाह!" सेफालिका व्यंग के साथ बोली—"उसका चेहरा देख कर तुम्हारा तो

मानो सिर ही घूम गया हो। तुम इस प्रकार चौंकते क्यों हो?"

वस्तुतः ब्रह्मानन्द में एक तरह का भावान्तर हो गया था। सेफालिका की इस बात से कुछ अप्रस्तुत होकर आत्मसंयम पूर्वक वह बोला—ना, ना, यह क्या कहती हो सेफालिका। तुम क्या समझती हो हमारे मित्र का विवाह हो और हमें निमंत्रण भी न हो, इसी से आश्चर्य होता है। फिर ब्रह्मानन्द उस फ़ोटो को निविष्ट चित्त से देखने लगा और कुछ देर बाद उसने पूछा—"हाँ, इसका नाम क्या है?" इन्दु के विषय में जानने का उसका इस प्रकार आग्रह देख सेफालिका का क्रोध बढ़ता जाता था। उसने विरक्ति के साथ कहा, इन्दु, इन्दुमती समझे?

'इन्दुमती' का नाम सुन कर ब्रह्मानन्द एक बार फिर चौंक उठा। सेफालिका विस्मित होकर बोली—"तुम इस प्रकार क्यों करते हो? वह क्या तुम्हारी जान पहचान की है?"

"एँ, ना यह बात नहीं है।" कह कर ब्रह्मानन्द ने मानो कुछ बातें छिपा लीं। सेफालिका ने उसे विशेष रूप से देखा और आशान्वित होकर उसका हाथ पकड़ कर बोली—"सच कहो ब्रह्मानन्द, क्या तुम उसके विषय में कुछ गोपनीय बात जानते हो।" ब्रह्मानन्द सेफालिका को अच्छी तरह से जानता था। उसने समझ लिया कि सेफालिका के इन्दु के प्रति कैसे भाव हैं। जो हो, उसने बात को वहीं दबा दिया और स्वाभाविक स्वर से पूछा—क्या तुम्हारी मास्टर महाशया से जाकर हम मिल सकते हैं?"

ब्रह्मानन्द का भावान्तर देख सेफालिका को पूर्ण रूप से

विश्वास हो गया कि वह इन्दु के अतीत जीवन के सम्बंध में बहुत कुछ जानता है। यदि उससे इन्दु के सर्वनाश साधन में कुछ भी सहायता मिली तो........, इस विचार से सेफालिका आनन्द से फूली न समाई। वह ब्रह्मानन्द का हाथ न छोड़ सकी। उसने हर्ष से कहा—'क्यों भाई, मिल क्यों नहीं सकते। तुम कुछ दूसरे थोड़े हो। मिहिर इन्दु को लेकर पश्चिम गया था। आज घर लौट आवेगा। तार आया है। मालूम होता है, अभी ही आया है। संध्या समय चल कर बातें करा दूँगी, समझे।'

ब्रह्मानन्द के मन में घोर संदेह हो उठा—"यह इन्दु कौन है?"

बारहवाँ परिच्छेद

वाक्यवाण

Women of the world never use harsh expressions when condemning their rivals. Like the savage they hurl elegant arrows, ornamented with feathers of purple and azure but with poisoned points.

—*De Finod.*

हिर अपने घर के फाटक पर खड़ा था। सेफालिका के साथ ब्रह्मानन्द जा पहुँचा। यथाभिवादन के पश्चात् कुशल समाचार पूँछ कर सब के सब बैठकख़ाने में बैठ गये। उस समय इन्दु ऊपर थी। सेफालिका की बात सुन कर नीचे उतर आयी। उससे घर के सभी आदमियों का एक एक करके समाचार पूछा।

इसी बीच एक नवागन्तुक व्यक्ति ने भी इन्दु को नमस्कार किया। उसे देख इन्दु चौंक गई। उसने भी इन्दु को आपाद मस्तक बड़ी तीव्र दृष्टि से देखा। मिहिर ने सब कुछ देखा पर यह कारण कुछ भी न समझ सका और अन्यमनस्क होकर फिर ब्रह्मानन्द के साथ बातें करने लग गया। इन्दु ने मृदु-हास्य से

सेफालिका से पूछा—वे कौन हैं ? उसने कहा—नाते में वे हमारे भाई लगते हैं। नागपुर में डॉक्टरी पढ़ते हैं। इस समय ग्रीष्मावकाश में हमारे यहाँ आये हैं। उधर ब्रह्मानन्द बातें तो करता था मिहिर के साथ, पर बीच बीच में इन्दु का अवयव भी लक्ष्य कर लिया करता था। यह बात मिहिर को बुरी लगती थी।

अकस्मात् सेफालिका ने वस्त्राञ्चल से एक चमकती हुई सोने की अँगूठी इन्दु के सामने रख कर पूछा—मास्टर महाशया यह किसकी अँगूठी है। इसे आप भूल गई थीं। मैंने देखा तो उठा कर रख दिया।

अँगूठी देखते ही इन्दु का मुखमण्डल मलिन हो गया। किन्तु क्षण भर में ही आत्म-संयम कर बोली—"हाँ, हाँ, यही तो है।" और काँपते करों से अँगूठी ले ली। सेफालिका ने व्यङ्ग स्वर से कहा—शायद आपको किसी मित्र ने इसे प्रेमोपहार स्वरूप दिया था—और मुस्कराई।

'छिः, यह क्या कहती हो सेफालिका ?' इन्दु कुछ विमर्ष सी हो कर बोली। सेफालिका ने उत्तर दिया—उसके ऊपर जो 'एन० सी०' खुदा हुआ है। इससे मैंने समझा कि एन० सी० नामधेय कोई आपका था— बीच ही में बात काट कर इन्दु बोली—हाँ, वह एन० सी० ? वह एन० सी० है हमारे पिता का नाम था—'नरसिंह चन्द्र'।

सेफालिका ने भद्रता से कहा, तो वही हो सकता है। मेरे कहने का कुछ बुरा मत मानियेगा। किन्तु इन्दु के सौभाग्यवश सेफालिका '१९१४' का क्या अर्थ है ? पूछना भूल गयी। इन्दु ने

परमेश्वर को धन्यवाद देते हुए अँगूठी को वस्त्राञ्चल में छिपा लिया।

सेफालिका उठ कर मिहिर से बोली—मिहिर दादा, चलो तुम्हारी पुष्प-वाटिका देख आवें। मिहिर ने सानन्द कहा—चलो। दोनों वाटिका में घुस गये। इन्दु और ब्रह्मानन्द भी साथ ही चले पर कुछ दूर जाकर धीरे धीरे दूसरी ओर खिसकने लगे।

ब्रह्मानन्द ने कोमल स्वर में कहा—देखिये, यदि आप बुरा न मानें तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। इन्दु ने कहा—स्वच्छन्दता पूर्वक पूछ सकते हैं। ब्रह्मानन्द बोला—मैंने शायद आप को कहीं देखा है।

इन्दु—क्या? मैंने तो आपको कहीं नहीं देखा है।

ब्रह्मानन्द—क्या आप कभी राँची गयी थीं।

इन्दु का मुख काला हो गया। उसने कहा—राँची तो मैं किसी भी जन्म में नहीं गयी। ब्रह्मानन्द ने इन्दु के परिवर्त्तन को देख लिया और पूछा क्या आप सुरेन्द्रनाथ नामक किसी आदमी को जानती हैं?

वस्त्रों के भीतर ही इन्दु का समस्त शरीर काँप रहा था। आत्म-गोपन करने के लिये उसने उसी क्षण चम्पक वृक्ष की एक शाखा पकड़ ली। उसने पूछा—आप ये सब क्या पूछते हैं? इन्दु ने देखा ब्रह्मानन्द की तीक्ष्ण दृष्टि इन्दु का अन्तस्थल भेद कर रही है। ब्रह्मानन्द ने अब दृढ़ता के साथ पूछा—"और नरेश राय नामक......"

इन्दु की सहिष्णुता यदि असाधारण न होती तो वह उसी दम भूमि पर गिर पड़ती। किन्तु संसार के कितने ही आवर्तों में पड़ कर उसने आपद विपद के लिये प्रस्तुत होना सीख लिया है। वह ब्रह्मानन्द की बात काट कर बीच में ही तीव्र स्वर से बोल उठी—"आप मुझे क्या समझते हैं? संसार में जितने रामा-श्यामा हैं उनसे परिचय न होने से क्या मेरा काम ही नहीं चल सकता! एक भद्र गृहस्थ के परिवार के साथ वार्तालाप करने के लिये क्या आपको कोई विषय ही न मिला?

इन्दु की यह दृढ़ता देख ब्रह्मानन्द ने सोचा—"छिः मैंने भूल की।" वह अप्रतिभ हो गया। बोला—"क्षमा कीजियेगा, बड़ी भूल हो गई। क्षमा चाहता हूँ।"

इन्दु वहाँ से चलने के लिये उद्यत हुई। देखा मिहिर और सेफालिका उसी ओर आ रहे हैं? इन्दु उसी समय फिर गयी। ब्रह्मानन्द का हाथ पकड़ कर बोली—"देखिये, इसे मन में मत लाइयेगा और मिहिर बाबू से ये सब बातें मत पूछियेगा। इन्दु की आखों में उस समय उद्वेग और प्रार्थना के भाव थे। ब्रह्मानन्द ने दृढ़ता से प्रतिज्ञा की—"कदापि न पूछूँगा। आप निश्चिन्त रहें।" इन्दु के इस अन्तिम कार्य से ब्रह्मानन्द के हृदय पर यह दृढ़ भाव जम गया कि इन्दु निश्चय ही दोषी है।

सेफालिका ने आकर दोनों की ओर एक विद्रुप कटाक्ष किया और व्यङ्गस्वर से बोली—क्यों ब्रह्मानन्द, तुम्हारा तो ऐसा हाव भाव हो गया मानो मास्टर महाशय से तुम्हारी पहले की जान पहचान हो। क्यों मिहिर दादा?

ब्रह्मानन्द ने दृढ़ स्वर से कहा—"पृथ्वी के समस्त जीव तो तुम्हारे ही सदृश नहीं हैं।"

मिहिर अन्यमनस्क भाव से एक पेड़ की पत्तियाँ तोड़ने लगा।

× × ×

सन्ध्या को विदा लेते समय ब्रह्मानन्द इन्दु के कान में धीरे धीरे कह गया—कल मध्यान्ह काल में बालीगंज स्टेशन पर मुझ से मिलिये।

इन्दु चौंक गयी पर अस्वीकार न कर सकी।

तेरहवाँ परिच्छेद

यह क्या ?

"What will not woman, gentle woman dare,
When strong affection stirs her spirit up"

—*Southey*

उस समय एक बज चुका था। उसने अपनी सास से कहा कि मिहिर को लाने के लिये वह कलकत्ते जा रही है। मोटर तैयार थी। इन्दु उस में बैठ गयी। ड्राइवर ने स्टार्ट किया। कुछ दूर जाकर इन्दु ने कहा—बालीगंज स्टेशन पर ले चलो। आध ही घंटे में गाड़ी स्टेशन पर पहुँच गयी। इन्दु ने उतर कर जाते समय कहा—मेरे लौट आने तक गाड़ी यहीं रखना! ड्राइवर 'जो हुकुम' कह कर गाड़ी में सो रहा।

मिहिर दस बजे भोजन कर कलकत्ते गया था और जाते समय ड्राइवर से कह गया था कि चार बजे के बाद मेरा आॅफ़िस में ले आना। इन्दु इस बात को जानती थी।

जो हो, इन्दु ने स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर देखा कि ब्रह्मानन्द

एक जगह खड़ा है। उसने इन्दु को देखते ही हाथ से संकेत कर यात्रियों के विश्राम-गृह में प्रवेश किया।

इतने ही में इन्दु और ब्रह्मानन्द, दोनों ही ने मानों दोनों को पहचान लिया है। दोनों ही के सब संकोच की बाँध मानों कब से टूट गई है। ब्रह्मानन्द जानता था कि इन्दु आज आकर आत्म-प्रकाश अवश्य ही करेगी। इन्दु भी उसी लिये प्रस्तुत हो कर आयी थी।

वेटिङ्ग रूम में एक बेंच खींच कर दोनों बैठ गये। उस समय वहाँ और कोई न था। ब्रह्मानन्द ने कहा—मैंने आपको अच्छी तरह पहचान लिया है। मुझ पर अब आप कुछ भी सन्देह न करें। मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ मैं आपका किसी प्रकार अनिष्ट न करूँगा।

इन्दु कृतज्ञता पूर्वक बोली—मुझे ऐसा विश्वास है।

ब्रह्मानन्द—शायद आपको याद होगा, आपके यहाँ, राँची में, मैंने सुरेन के साथ दो-एक बार निमंत्रण-भोज खाया है। नहीं कह सकता, आपको याद है या नहीं, आपने स्वयँ ही हम लोगों के सामने थालियाँ परोसी थीं।

इन्दु ने सिर झुका कर कहा—"कुछ कुछ याद है।" ब्रह्मानन्द ने कहा—"सुरेन हमारा बाल-सखा था। वह जब गिरिडीह छोड़ कर राँची प्रवासी हुआ तब मैं एक बार नागपुर से राँची गया था। इसी से आप लोगों की कुछ बातें मुझे मालूम हैं। नागपुर जाने के प्रायः एक ही मास बाद सुना कि आपके पतिदेव ने बन्धुत्व के प्रतिदान स्वरूप हत-भागी सुरेन को जेल में ठेल दिया"—कहते

कहते ब्रह्मानन्द की आँखें लाल हो गयीं। इन्दु ने लज्जा और विषाद से सिर झुका लिया। उस समय बाहर भीषण जनरव सुन पड़ता था। भीड़ अधिक थी। देखते देखते कलकत्ते से दो गाड़ियाँ घड़घड़ाती हुईं बालीगञ्ज स्टेशन पर खड़ी हो गयीं।

ब्रह्मानन्द कहने लगा—उसके बाद योरोपीय युद्ध में नरेश की मृत्यु का सम्वाद पाकर ही शायद आपने बालीगंज आकर मल्लिक महाशय के घर में नौकरी कर ली। इन्दु ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, केवल एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर रह गयी। ब्रह्मानन्द ने कहा—सुरेन तो अब इस संसार में नहीं रहा। मैं निश्चय ही कहूँगा कि उसी के अभिशाप से नरेश की अकाल-मृत्यु रण-प्राङ्गण में हुई है। इन्दु चमक उठी एवं रुद्ध कण्ठ से बोली—नहीं वे तो युद्ध-क्षेत्र से लौट आये थे। प्रायः दो मास हुए किसी ने बालीगंज में ही उनकी हत्या कर डाली है!

"नरेश युद्ध में नहीं मरा? बालीगंज में किसी ने उसकी हत्या कर दी? आप क्या कहती हैं?"—कहते हुए ब्रह्मानन्द उठ खड़ा हुआ। इन्दु ने सिर झुका लिया। ब्रह्मानन्द अब न जाने क्या कहना चाहता था कि इसी समय पीछे से किसी ने पुकारा—"इन्दु?" दोनों ही उसी ओर मुड़ गये। देखा, पास ही मिहिरचन्द्र खड़ा है।

मिहिर को देखते ही इन्दु उठ खड़ी हुई। ब्रह्मानन्द ने अप्रस्तुत भाव से ही उसे नमस्कार किया। मिहिर ने ब्रह्मानन्द को सामने देख कर इन्दु से पूछा—'तुम इस समय यहाँ कैसे आयीं?' मिहिर के स्वर में मानो कुछ कर्कशता भरी थी।

इन्दु ने बिना कुछ सोचे समझे ही कहा—तुम भी बाहर चले आये थे। दोपहर को अकेले रहना अच्छा नहीं लगा। तुम्हें कलकत्ते से ले आने की बात माँ से कह कर चली आयी। किन्तु रास्ते में आकर विचारा कि तुम अनेक कार्यों में व्यस्त होवोगे। यदि चार बजे के पूर्व ही तुम्हें कार्य से विरक्त करने जाऊँ तो कार्य की क्षति होगी। इसी लिये एक बार स्टेशन की ओर घूमने आयी तो देखा कि प्लेटफ़ार्म पर ब्रह्मानन्द बाबू खड़े हैं। एक भद्र मनुष्य से मुलाक़ात हो जाने के कारण कुछ बातें करने लग गयी।

इतने मात्र से ही मिहिर सन्तुष्ट हो गया। उसने कहा—"अच्छा यही बात है? तो तुमने सवेरे ही मुझ से क्यों नहीं कहा था? मैं तुम्हें साथ ही कलकत्ते ले जाता"—कहते कहते दोनों ही विश्रामगृह से बाहर निकले। ब्रह्मानन्द अवाक् होकर रह गया—बलिहारी है तुम्हारी बुद्धि को!

इन्दु ने जाते समय कातर दृष्टि से एक बार ब्रह्मानन्द की ओर देखा। ब्रह्मानन्द ने उस दृष्टि का अर्थ पूर्ण रूप से समझ लिया। मानों इन्दु कहती गयी—तुमने मेरे हृदय के समस्त रहस्य को जान लिया है। देखो, उसे दूसरे के निकट प्रकाशित कर कहीं मुझे सर्वनाश के पथ में न ढकेल देना।

मोटर में बैठ कर इन्दु ने मिहिर से पूछा—"तुम तो कभी ट्रेन में नहीं आते थे, आज कैसे आ गये?" मिहिर ने कहा—"विचारा था कि चार बजे तक ऑफ़िस में रहना होगा; इसीलिये ड्राइवर को चार बजे के बाद मोटर लाने के लिये कहा था। किन्तु

एक बजे ही काम समाप्त हो गया। देखा, मोटर के लिये अभी तीन घंटे तक बैठना होगा। टैक्सी की और सियालदा स्टेशन पर आ ट्रेन पर चढ़ा। यहाँ दरवाज़े पर आकर देखा कि हमारी ही मोटर अपेक्षा कर रही है। ड्राइवर से पूछा तो उसने कहा कि तुम्हें ही ले आया है। अतः तुम्हें ढूँढ़ते ढूँढ़ते उधर को चला आया।"

मोटर तेज़ी से चलने लगी।

चौदहवाँ परिच्छेद

भुजङ्गी का चक्र

" O, mischief ! thou art swift
To enter in the thoughts of desperate men ? "

—*Shakespeare.*

विश्वमाता के प्रभामय ललाट केन्द्र में उज्ज्वल सुवर्ण-तिलक की भाँति कृष्ण पक्ष का द्वितीया चन्द्र उदित होकर दिगन्त की सीमा में खड़ा हो गया। धरणी के अनन्त कलुष की भाँति काला अँधकार नील आकाश के वक्ष से उतर कर धीरे धीरे पश्चिम समुद्र की अन्तराल में विलीन होने लगा।

उस समय रात के नौ बजे थे। मल्लिक की वाटिका में बैठ कर उस समय भी ब्रह्मानन्द कुछ सोच रहा था। उस अपराह्न की स्टेशन की घटना—इन्दु का बाल्य जीवन—स्वामी द्वारा निर्यातन, मिशनरी का आश्रय, मल्लिक के गृह में शिक्षिकता, मिहिर के साथ विवाह, नरेश की हत्या, इत्यादि एक एक कर अनेक भाव ब्रह्मानन्द के मन में उठने लगे। नरेश की किसने हत्या की ?—इन्दु ! ना, इस प्रकार के कोमल कर में नर-हत्या

के लिये तीक्ष्ण अस्त्र उठ ही नहीं सकते। विशेषतः नरेश उसका स्वामी है। इस प्रकार विचार करना भी पाप है। तब किसने—मिहिर ने? मिहिर का स्वार्थ तो है। तो क्या वह इतना पतित हो सकता है?—कौन जानता है! मनुष्य का ही तो मन है! मुख देख कर नहीं जाना जा सकता। प्रस्फुटित कमल के बीच में ही गुप्त रीति से विषकण्ठ भुजङ्ग छिपा रहता है! सो कौन जानता है!!

उष्ण ललाट पर कर संचालन करते करते—ब्रह्मानन्द एक बार इधर उधर टहल कर फिर बैठ गया।

'अच्छा इन्दु यदि निर्दोष है तो इतने दिनों तक उसने अपने जीवन का रहस्य मिहिर को क्यों नहीं बताया? इसका क्या अर्थ है? उसके प्रकाशित होने की आशंका से वह इस प्रकार भयभीत क्यों होती है? प्रतीत होता है इन्दु इस हत्या-रहस्य के सम्बन्ध में भी कुछ न कुछ अवश्य जानती है। ब्रह्मानन्द अब भ्रू कुञ्चित कर खड़ा हो गया।

एँ! तो क्या इन्दु को जानता है—रमणी! उनके कटाक्ष की अन्तराल में विष रहता है—उनकी हँसी की चमक के बीच वज्र की शलाका छिपी रहती है। उनका विश्वास नहीं किया जा सकता।

ऐं! इन्दु। ना मिहिर! या कोई भी नहीं! तब कौन? मुझे तो पता लगाना ही होगा। इन्दु सब जानती है—न जानने पर भी अनुमान से कुछ बता सकती है। नहीं तो इतना भय क्यों करती है? इन्दु के साथ चाहे जिस किसी प्रकार क्यों न

हो एक बार भेंट करनी होगी। किन्तु इसके लिये उपाय क्या है? उसके घर मैं न जाने पाऊँगा। मिहिर को मेरे चरित्र पर सन्देह हो गया है। इसे मैंने अच्छी तरह समझ लिया है। तो क्या इन्दु को पत्र लिख भेजूँ ? पर उसे किसके द्वारा भेजूगा? हाँ ! अच्छा हुआ! सेफालिका! सेफालिका की सहायता से सब कुछ हो सकता है। ब्रह्मानन्द ने व्यग्र होकर एक बार पीछे देखा—पीछे सेफालिका खड़ी है!

ब्रह्मानन्द चमक कर बोला—क्यों सेफालिका? तुम कब से यहाँ खड़ी हो?

सेफालिका ने उत्तर नहीं दिया,—तीक्ष्ण दृष्टि से ब्रह्मानन्द की ओर देखती रह गई। ब्रह्मानन्द ने फिर पूछा—क्या मुझे बुलाने आयी हो—शायद भोजन करने का समय हो गया है?

सेफालिका ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"मैंने सोचा था कि उस डाइन के सामने जो एक बार पड़ जाय उसी का सिर फिर जाता है। आज दो दिनों से देखती हूँ कि तुम कुछ न कुछ सोचा करते हो। मिहिर की भाँति तुम्हारा सिर भी उसने फिरा दिया है क्या!

ब्रह्मानन्द ने अच्छी तरह समझ लिया कि सेफालिका इन्दु को किस भाव से देखती है। उसने बिचारा कि इसी के द्वारा कार्य-साधन कराया जा सकता है। कुछेक हँस के कहा—हाँ, सेफालिका! दो एक दिन के वार्तालाप से जो कुछ मैंने समझा है वह है इन्दु के गतजीवन का एक रहस्य, मैंने उसके सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धान पाया है।

सहसा सेफालिका का मुख मण्डल उत्फुल्ल होगया ब्रह्मानन्द का हाथ पकड़ कर उसने कहा—क्या सच कहते हो ?

ब्रह्मानन्द ने गम्भीरता से कहा—उस बात को सुनकर तुम विश्वास ही नहीं कर सकोगी।

अब सेफालिका ब्रह्मानन्द के दोनों हाथ पकड़ कर बोली—मुझ से सब स्पष्ट कह दो मैं और किसी से नहीं कहूँगी, कह दो !

ब्रह्मानन्द ने कहा—अभी कुछ और बाक़ी है। उसका अनुसंधान शेष होने के पूर्व मैं तुमसे कुछ नहीं कह सकता।

सेफालिका ने खिन्न होकर कहा—ऐसी क्या बात है ?

ब्रह्मानन्द ने मानो कुछ सोच कर फिर कहा—अच्छा सेफालिका, तुम किसी प्रकार एक बार और इन्दु के साथ मेरी बातें करा दे सकती हो ? ऐसा होने से कल ही सब बातें समाप्त हो जाँयगी। हो जाने पर कल रात को तुमसे कहूँगा—सेफालिका ! पर क्या यह बात सम्भव है ?

सेफालिका ने ब्रह्मानन्द का हाथ छोड़कर कहा—एक ही बार क्यों सैकड़ों बार भी बातें करा दे सकती हूँ। कहो कब चाहते हो ?

ब्रह्मानन्द ने गम्भीरता पूर्वक कहा—कल मध्याह्नोपरान्त हो तो अच्छा हो। किन्तु उनके घर नहीं, कहीं अन्यत्र।

सेफालिका अन्यमनस्क भाव से बोली—ऐसा क्यों ? किसी निर्जन स्थान में होना चाहिये। यह कह वह एकाग्र चित्त से कुछ सोचने लगी।

ब्रह्मानन्द भीतर ही भीतर खूब हँस रहा था। सोचता

था सेफालिका के ऊपर ख़ूब चाल चली जा रही है। किन्तु उसे यह नहीं मालूम था कि सेफालिका भीतर ही भीतर उसके सर्वनाश की भी कल्पना कर रही है। दुष्ट भुजंगिनी एक ही विषदन्त से दो जन का मर्म भेद कर देगी, यह बात सरल-प्राण ब्रह्मानन्द न समझ सका!

सेफालिका कुछ हँस कर बोली—ऐसा हो तो कल सवेरे ही इन्दु के पास जाकर सब प्रबन्ध कर दूँगी।

ब्रह्मानन्द ने भी मुस्करा कर कहा—कर सकती हो? किन्तु देखो मिहिर कुछ भी समझने न पावें।

सेफालिका उपेक्षा के साथ बोली—मिहिर को इतनी बुद्धि कहाँ!

× × ×

उधर इन्दु सोच रही थी—"और कितने दिनों तक इस विष की ज्वाला सहूँगी। अन्तर जला जा रहा है। जीवन्मृत अवस्था से प्रकाश्य मरना ही अच्छा था। चित्त में कोई पाप नहीं तब भी मुँह छिपा कर चोर की भाँति रहती हूँ। यह भाव देख वे भीकभी कभी सन्देह करने लगते हैं। न अब नहीं रुक सकती! अदृष्ट में चाहे जो कुछ भी भुगतना हो भुगतना पड़े—आज उनसे सब कुछ खोल कर कह दूंगी।" इन्दु ने दृढ़ता पूर्वक सब बातें विचारीं। उसी समय मानोभय ने आकर भीतर ही कहा—"सावधान, ऐसा करने से मिहिर को गँवाना पड़ेगा। नरेश की हत्याकारिणी का सन्देह कर मिहिर तुम्हें घृणा से पद-दलित कर देगा। पृथ्वी में तुम्हारा कोई ऐसा अवलम्ब नहीं जिसके द्वारा तुम प्रमाणित

कर सको कि तुम उसकी हत्याकारिणी नहीं हो। इन्दु सिहर गयी, दोनों हाथों से छाती दबा लिया। इन्दु को मरना स्वीकार है पर मिहिर को तजना उसे स्वीकार नहीं है!

इन्दुमती फिर भी सोचने लगी—ना, कह कर ही क्या करूँगी। बालीगञ्ज में मेरे शत्रु जुट गये हैं। सेफालिका मेरे छिद्रान्वेषण में व्यस्त है। उसके बाद है ब्रह्मानन्द। उसने मुझे पहचान लिया है। स्टेशन पर मुलाक़ात होने के बाद उससे इतना भी अनुरोध न कर सकी कि ये सब बातें दूसरे से मत कहना। हो सकता है कि अब उसने सारी बातें सेफालिका से कह दी हों। यदि ऐसा हो गया हो तो मेरी रक्षा अब असम्भव है। क्या करूँ! एँ! क्या करूँ! यदि किसी प्रकार उससे एक बार और भेंट हो जाती!

इन्दु ने कल सारी रात इसी चिन्ता में बितायी। रात को नींद न आयी। केवल विकलता में करवटें बदलती रही। आज सवेरे उठ कर वही बात सोच रही है। इसी समय पीछे से किसी ने पुकारा—"मास्टर महाशया"।

इन्दु ने एकाएक फिर कर देखा—सेफालिका! अस्त-व्यस्त होकर इन्दु ने उसका हाथ पकड़ कर एक कुर्सी पर बैठा दिया। सेफालिका ने कहा—"नहीं भाई, बैठने की फुर्सत नहीं है। एक विशेष बात कहनी है।" यह कह उसने इन्दु के कान में बड़ी देर तक न जाने क्या कहा? इन्दु ने सभी बातें सुन लीं और कहा—"अवश्य ही जाऊँगी। किन्तु कहाँ भेंट होगी।" सेफालिका ने

उत्तर दिया—"नायबों के टूटे फूटे मकान के पास ही, खूब निर्जन स्थान है!"

सेफालिका जाने के लिये उठी और दो तीन क़दम जाकर फिर लौट आयी और बोली—'देखो मिहिर, दादा से यह कह कर जाना कि तुम मुझ से मिलने जाती हो।' यह कह सेफालिका चली गयी।

इन्दु के मन में ग्लानि होने लगी। उसने अपने मन को धिक्कारा, "छि; सेफालिका को मैं अपना शत्रु समझती हूँ, किन्तु इस समय उसके समान हमारा दूसरा कौन सहायक है।"

सेफालिका मन ही मन कहती जाती थी—'इन्दु, इसी बार मेरा पूर्ण प्रतिशोध है! यदि सको तो आत्म-रक्षा करो।'

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

षड़यन्त्र रचना

" Better confide and be deceived—
A thousand times by treacherous foes,
Than once accuse the innocent,
Or let suspicion mar repose."

—*Mrs. Asgood.*

ल्लिक-गृह की पश्चिम ओर गोविन्दपुर के ज़मीन्दारों का विशाल भवन है। उसके पश्चिम राज-पथ और राज-पथ के पश्चिम-निकट ही वृक्ष गुल्माच्छादित विराट प्रान्तर है। उसी के एक कोने में रतनपुर के नायब बाबुओं ने कुछ ज़मीन लेकर गृह-निर्माण आरम्भ कराया है। सन्ध्या के चार बजे तक राज-मिस्त्री काम करके वहाँ से चले जाते हैं। तत्पश्चात् यह स्थान जन-हीन हो जाता है। इन्दु और ब्रह्मानन्द के साक्षात् के लिये सेफालिका ने यही स्थान निर्वाचित किया था।

उस समय पाँच बज चुके थे। इन्दु और ब्रह्मानन्द ईंट की दीवाल पर बैठ कर बातें कर रहे थे।

ब्रह्मानन्द—नरेश अवश्य ही आपके अनुसन्धान के लिये बालीगञ्ज आया होगा।

इन्दु—नहीं, मैं राँची में हूँ? यह भी वे नहीं जानते। वे मेरे स्वामी के बाल-सखा हैं। इसी लिये उनके साथ मिलने आये थे। ब्रह्मानन्द भ्रू संकुचित कर सोचने लगा और फिर बोला—आप इसे बुरा मत मानियेगा मैं आप से एक बात पूछता हूँ। क्या आपको इसमें तनिक भी सन्देह है कि मिहिर बाबू भी इस हत्याकाण्ड में सम्मिलित हैं ?

इन्दु का मुखमण्डल आरक्तिम हो उठा। वह बोली—'आप उनके चरित्र से अनभिज्ञ होकर ही यह बात पूछते हैं। उनका जैसा स्वच्छ हृदय है वैसा कदाचित् देवताओं का ही हो सकता है। यदि हो तो मैं यह विश्वास कर सकती हूँ कि मैंने ही अपने पूर्व स्वामी के ऊपर घोर निद्रा में, स्वप्न के मोह में अस्त्राघात किया है किन्तु मैं इस बात का विचार तक नहीं कर सकती कि वे नरेश के हत्याकारी हैं।'

ब्रह्मानन्द अप्रतिभ होकर बोला—"क्षमा कीजियेगा। मैंने अनुचित कहा। अच्छा आपने अपने जीवन का रहस्य जो मिहिर बाबू से गुप्त रखा है, इससे क्या लाभ है? भस्म के नीचे आग की तरह, सत्य कदापि मिथ्या के आवरण में अधिक दिनों तक नहीं छिपा रह सकता। विशेषता जब कि बालीगंज में आपके शत्रुओं का अभाव नहीं है।"

इन्दु का मुख-मलिन होगया। उसने कोमल स्वर में कहा—"यदि आप यह बात सेफालिका से न कहें तो......"

ब्रह्मानन्द ने आश्वासनमय दृढ़ स्वर में कहा—आप मुझ पर विश्वास करें मैं आपका भाई हूँ। यदि कभी प्राण देकर भी मैं आपका कोई उपकार कर सकूँ तो उसके लिये भी मैं तैयार हूँ। मान लीजिये, मैं इसे प्रकाशित न करूँ पर इस प्रकार की कितनी ही घटनाएँ घट सकती हैं जिनके द्वारा आपके स्वामी समस्त बातों को जान जायँगे। सत्य कदापि छिप नहीं सकता। इन्दु ने कातर होकर पूछा—"तो आप क्या करने को कहते हैं ?"

ब्रह्मानन्द—"आप अभी जाकर सभी बातें मिहिर बाबू से खोल कर कह दीजिये। मैं समझता हूँ कि आप यह मिथ्या-गोपन करने का प्रयास कर दिन दिन जलती जाती हैं। आपसे मेरा यही अनुरोध है कि इसी क्षण अपने स्वामी से सभी बातें खोल कर कह दीजिये।"

इन्दु स्तब्ध होकर सोचने लगी। फिर कम्पित स्वर से बोली "ना नहीं हो सकता, यह मुझ से नहीं हो सकता।"

ब्रह्मानन्द—क्यों ? क्या आप समझती हैं कि आपके स्वामी आपको पुलिस के हवाले कर देंगे ? क्या वे इतने निष्ठुर हैं ?

इसी समय अदूर वृक्ष छाया में दो मनुष्य मूर्तियाँ दृष्टिगोचर हुईं। एक पुरुष था और दूसरी थी रमणी। पुरुष था मिहिरचन्द्र, रमणी थी सेफालिका ! सेफालिका मिहिर को कुछ दिखा कर द्रुत पद से चलती बनी।

इन्दु स्तब्ध होकर सोचने लगी। धीरे से उसके नेत्रों से दो बूँद आँसू निकल आये।

ब्रह्मानन्द बोला—ओ, यह क्या ? छिः, यदि सत्य कहने से

उसके लिये किसी प्रकार निर्यातन भी भोग करना पड़े तो उसके लिये आप इतना डरती हैं? आप निर्दोष हैं; पुलिस आपका क्या कर सकती है?

इन्दु का अश्रु झर झर कर झरने लगा। वह रोती हुई, बोली—वे मेरा परित्याग कर देंगे, मैं उन्हें छोड़ नहीं सकती! ब्रह्मानन्द ने इन्दु का हाथ पकड़ कर कहा—छिः, आप यह क्या करती हैं? उस समय इन्दु का अश्रुवेग अदमनीय था, वह सुसुक सुसुक कर रो रही थी।

इसी समय पीछे से किसी ने बज्र-गम्भीर स्वर में पुकारा "इन्दु!" सम्मुख में यदि एक उल्कापात होता तो ब्रह्मानन्द इतना विस्मित नहीं होता जितना वह मिहिर को निकट ही खड़ा देख कर हो गया। इन्दु हठात् एक ओर डर कर खड़ी हो गयी। उसने देखा मिहिर का मुख मण्डल आरक्तिम, नयनों में तीव्र अविश्वास का भाव था—किन्तु वह कुछ बोली नहीं।

मिहिर ने कठोर शब्दों में कहा—"साथ चली आ।"

स्थिर और गम्भीर होकर इन्दु मिहिर के साथ चली। दोनों ही नीरव थे। केवल ऊपर सजल मेघ-पुञ्ज में बज्र-गर्जन हो रहा था, प्रबल वायु वेग से रह रह कर शून्य प्रान्तर में वृक्ष पत्र कलरव करते थे।

ब्रह्मानन्द गम्भीर होकर खड़ा ही रह गया।

सोलहवाँ परिच्छेद

गृह त्याग

Must I consume my life—this little life,
In guarding against all may make it less
It is not worth so much !—it were to die,
Before my hour, to live in dread of death.'

—*Byron.*

उस समय सन्ध्या बीत गयी थी। सुनील गगन में नक्षत्र नहीं थे। केवल अतुल मेघ खण्ड मानो किसी महा आयोजन की आशा में इधर उधर चक्कर काट रहे थे। एक प्रलय झटिका के प्रथम आस्फालन की भाँति रह रह कर वज्र घर्घर करता था।

मिहिर ने बैठक गृह में प्रवेश कर बिजली का प्रकाश किया, और कर्कश शब्दों में पुकारा—"इन्दु, यहाँ आ !"

मुहूर्त्त भर दोनों ही नीरव थे। दोनों ही की दृष्टि शून्य थी। प्राचीर में चिपकी हुई एक छिपकली पतङ्ग भक्षण की आशा से इधर उधर संचरण करती थी। मिहिर शून्य दृष्टि से उसे ही देख रहा था। किसी एक असह्य वेदना से मानो मिहिर का हृदय उद्वेलित हो उठा। वह उसे प्रकाश नहीं कर सकता

था। इन्दु के मुख-मण्डल पर भी कुछ अशान्ति और उद्वेग के चिन्ह दिखायी देते थे—दृष्टि भूमि निबद्ध थी। दोनों में कोई भी प्रकृतिस्थ नहीं था।

कुछ क्षण बाद मिहिर दृढ़ भाव के बोला—"इन्दु, आज तुम से हमें अनेक बातें कहनी है।"

इन्दुमती ने भी ठीक उसी प्रकार उत्तर दिया—"हाँ, हमें भी तुमसे अपने जीवन की अनेक रहस्यमयी बातें कहनी हैं। आज कुछ भी छिपा न रखूँगी।"

मिहिर—"देखो इन्दु, पश्चिम से लौट आने के बाद से तुम्हारा आचार व्यवहार देख हमारे मन में विषम सन्देह उत्पन्न हो गया है। मैं जानना चाहता हूँ कि इसके भीतर कौन सा रहस्य निहित है।" ये बातें मिहिर ने शासन-स्वर में कहीं। उस समय इन्दु का ओष्ठ किसी मानसिक कष्ट से काँप रहा था।

इन्दु—"जानना चाहते हो कि क्या रहस्य है? तब सुनो। आरम्भ से ही सुनाती हूँ। "तुम्हारे साथ विवाह होने के पूर्व मेरा एक बार और विवाह हुआ था।" इन्दु के शब्द रुक रुककर निकलते थे। वह उस समय प्रकृतिस्थ नहीं थी।

ठीक उसी मुहूर्त्त इन्दुमती के मुख विवर से यदि एक विष-धर साँप निर्गत होकर मिहिर के सन्मुख फण विस्तार कर खड़ा हो जाता तब भी वह इतना विस्मित नहीं होता, जितना उसे इन्दु की बात सुन कर आश्चर्य हुआ। "क्या कहा इन्दु! तुम विवाहिता हो?" कहते हुए मिहिर ने चौंक कर आसन से उठना चाहा पर न उठ सका।

इसी समय दरवाज़े का पर्दा धीरे से हटा कर एक आदमी उसी घर में घुस आया। मिहिर ने चौंककर पूछा—'कौन' आगन्तुक ने नमस्कार कर कहा—"यह क्या मिहिर बाबू! आप मुझे पहचानते नहीं?"

मिहिर ने प्रकृतिस्थ होकर सामने देखा—पुलिस का गोयन्दा खड़ा है।

"कौन? डिटेक्टिव बाबू! आइये, बैठिये।" कह कर मिहिर ने आगन्तुक की अभ्यर्थना की। किन्तु उसका स्वर था शुष्क और अनैसार्गिक। गोयन्दा इस बात को अच्छी तरह ताड़ गया।

एक अपरचित व्यक्ति को घर में प्रवेश करते देख इन्दु पहले ही पर्दे के भीतर चली गयी थी। गोयन्दा का नाम सुनते ही उसका आपद मस्तक किसी अनिश्चित भय से काँपने लगा।

बहुत कुछ संयत होकर मिहिर ने पूछा—इस विषम दुर्योग में इस रात्रि के समय आप क्या विचार कर······?

गोयन्दा बोला—प्रयोजन अति गुरुतर है। हम लोगों का अनुसन्धान प्रायः समाप्त हो गया है। आपके मृतसखा जिस व्यक्ति के साथ उस गम्भीर रात्रि में मिलने गये थे, उसका पता हम लोगों ने बड़े कष्ट से पा लिया है। आपकी आज्ञा हो तो उसे गिरफ़ार कर लें।

इन्दु से और न सुना गया। उसके संज्ञा-लोप होने का उपक्रम होने लगा। इन्दु यह क्या सुन रही है। पुलिस का आदमी उसे पकड़ने के लिये उसी के स्वामी की सम्मति की प्रार्थना करता है। ऐं—यह क्या सच है? इन्दु जिसकी आशंका से

इतने दिनों तक म्रियमाण थी, वही विपद् आज आ पड़ी ! ओ फिर उपाय ! उपाय क्या है ?

इन्दु अब वहाँ क्षण भर भी नहीं ठहरी। उस गृह में अब उसके छिपने का स्थान न रहा। अभी पुलिस समस्त गृह उसे खोजने के लिये छान डालेगी। द्रुतपद से इन्दु वाटिका के गल से होकर बाहर निकल गयी। कहाँ जायगी, मालूम नहीं ? तथापि चल पड़ी। बड़ी सावधानी के साथ राजपथ में आकर खड़ी हो गयी।

चतुर्दिक घने अन्धकार से आच्छन्न था। प्रबल वायु से यत्र तत्र वृक्ष शाखायें भग्न होकर गिर रही थीं। रह रह कर आकाश के उद्दाम मेघ-राज्य के ऊपर उन्मादिनी दानवी के तीव्र कशाघात की भाँति चंचल विद्युत चमक जाती थी। इन्दु उसी के प्रकाश के सहारे द्रुत पद से बालीगञ्ज स्टेशन की ओर चली।

× × × ×

डायमण्ड हावड़ा से आकर कलकत्ता ट्रेन बालीगंज स्टेशन के सामने खड़ी है। उस समय रात्रि के साढ़े आठ बजे थे। इसके चले जाने के बाद ही कलकत्ते से डाउन ट्रेन आकर बाली-गंज में लगेगी। इसी गाड़ी से सेफालिका के मँझले मामा बना-रस से बालीगंज आ रहे हैं। तार पाकर उनकी अभ्यर्थना करने के लिये सेफालिका स्टेशन पर आयी है। उसके साथ ब्रह्मानन्द भी आया है। ब्रह्मानन्द का मुख-मण्डल चिन्ता से मलिन हो गया है। नीरव होकर वह प्लेटफॉर्म पर इधर उधर टहल रहा है। निकट में ही सेफालिका एक बेञ्च पर बैठी हुई है।

ट्रेन छूटने की पहली घण्टी बजी। बाबुओं ने पान सिगरेट के लिये आवाज़ लगाना क्रमशः कोलाहल में परिणत हो गया। गार्ड साहब ने उतर कर एक बार गाड़ी का आपाद् मस्तक देख लिया।

'एक टिकट, एक टिकट दीजिये मास्टर बाबू' कहती हुई इन्दु टिकट-मास्टर के बन्द जंगले पर कराघात करने लगी। भीतर से आवाज़ आयी 'टिकट बन्द हो गया है।'

"क्या सर्वनाश ?" कहती हुई इन्दु प्लेटफ़ॉर्म की ओर दौड़ी। उस समय दूसरी घण्टी बज चुकी थी। स्वेद बिन्दुओं से उसका वस्त्रांचल भीग गया था। उस समय भी उसके मस्तक से अनर्गल स्वेद बिन्दु टपक रहे थे। उसका श्वास रुद्धप्राय हो रहा था।

काँपती हुई इन्दु ट्रेन की ओर दौड़ी। अकस्मात् किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"यह क्या ? आप यहाँ कैसे ?" इन्दु ने फिर कर देखा—ब्रह्मानन्द !

"ब्रह्मानन्द बाबू मेरी रक्षा कीजिये, मुझे कलकत्ते ले चलिये।" कहते हुये इन्दु ने ब्रह्मानन्द का हाथ पकड़ लिया।

क्यों ? क्या हुआ है ?

पुलिस ! पुलिस !!

ब्रह्मानन्द ने अविलम्ब इन्दु का हाथ पकड़ कर एक फ़र्स्ट-क्लास के डब्बे में बैठा लिया।

गाड़ी पर चढ़ने के बाद इन्दु से अब बैठा नहीं गया। तीव्र भय एवं पथ-श्रम के कारण उसका शरीर अवसन्न हो गया था। क्रमशः वह बेहोश हो गई !

सत्रहवाँ परिच्छेद

विश्वास-घातिनी

Oh colder than the wind that freezes
Founts, that but now sun-shine play'd,
Is that congealing hang which seizes
The trusting bosom when betray'd !"

—*Moore.*
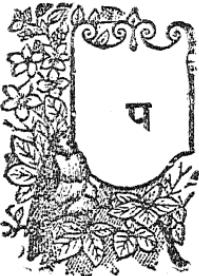
परस्पर हाथ मिला कर मिहिर और गोयन्दा दोनों ही खड़े होगये। "अच्छा तो चलता हूँ" कह कर गोयन्दा द्रुतपद से अन्धकार में अदृश्य हो गया है !

उस समय बैठक-गृह का प्रकाश बन्द कर मिहिर ने ऊपर जाकर पुकारा—"इन्दु ! इन्दु !"—कोई उत्तर नहीं मिला। मिहिर ने फिर पुकारा—'इन्दु !' मिहिर की माता गृह से बाहर निकल कर बोली—"क्यों बेटा, इन्दु तो ऊपर आयी ही नहीं, वह तो तुम्हारे ही साथ नीचे बैठी थी।" मिहिर ने दृढ़ता पूर्वक कहा—'नहीं, माँ उसे आये बहुत देर हुई।' यह कह इन्दु के शयन-

गृह के द्वार पर जाकर मिहिर ने देखा दरवाजे में बाहर से ही साँकल लगी थी।

भयभीत होकर मिहिर बोल उठा—"तो क्या हुआ ? इन्दु कहाँ चली गयी।" घर के दास दासियों ने दीपक लेकर स्नानालय, भोजनालय, पुस्तकालय, और वाटिका में सर्वत्र ढूँढ़ा—कहीं भी इन्दु का पता न लगा। काँपते हुए मिहिर बरामदे में एक भग्न कुर्सी पर बैठ गया। उसके समस्त शरीर से पसीना निकलने लगा।

टिं—टिं—टिरिं—टेलिफ़ोन यन्त्र से कोई बुला रहा है। मिहिर निश्चल रहा। फिर टिरिं—टिरिं। विरक्त होकर मिहिर ने यंत्र उठाया—'कौन ?' उत्तर हुआ—"मैं हूँ सेफालिका।" विरक्त होकर कर्कश स्वर में मिहिर ने पूछा—"क्या चाहती हो ? कहाँ से बोलती हो ? सेफालिका ने उत्तर दिया—"चाहती हूँ तुम्हें एक सुसमाचार सुनाना—सुनो। तुम्हारी इन्दु अभी ब्रह्मानन्द के साथ कलकत्ता गयी है।"

"क्या क्या इन्दु ?—मैं विश्वास नहीं कर सकता।" मिहिर ने तीव्र स्वर में उत्तर दिया। सेफालिका फिर बोली—"चाहे तुम विश्वास करो अथवा न करो इससे हमारा क्या आना जाना है ? मैंने तो यह बात अपनी आखों देखी है।"

उस समय मिहिर का सर्वांग काँप रहा था। उसने और कुछ सुनना नहीं चाहा। ज़ोर के साथ टेलीफ़ोन के कर्ण यंत्र को टेबुल पर पटक कर शयन-गृह को चला गया। माँ से कह

गया—इन्दु वेश्या है, न जानने के कारण मैंने उससे विवाह कर लिया !

गृह में प्रवेश करते ही मिहिर ने भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया। कुछ देर घर में उन्माद वश इधर उधर घूम कर शय्या के ऊपर लेट गया।

मानो किसी ने सूचि मुख में विष भर कर उसका सर्वांग विद्ध कर दिया है। उस यंत्रणा से अतिष्ठ होकर उसकी जीवात्मा मानो देह मुक्त होने के लिये भीतर ही भीतर उद्वेलित हो रही है। मिहिर शय्या पर पड़े पड़े इधर उधर हाथ-पाँव पटक रहा है।

कौन यही इन्दु ! इसके साथ मिहिर का क्यों साक्षात् हुआ ? अथवा उसके जीवन का आद्योपान्त वृत्तान्त जाने बिना उसने इन्दु के साथ विवाह ही क्यों कर लिया ? इन्दु ने कहा है—उसका एक बार और विवाह हुआ है ! यह ब्रह्मानन्द ही अवश्य उसका पूर्व स्वामी है। किस कारण से इन दोनों में विच्छेद हुआ और बालीगंज में साक्षात् होने से इन्दु उसके साथ चली गयी। ओ ! नारि ! विश्वासघातिनी ! अपनी हँसी के भीतर तुम लोग विष ढके रखती हो, अपनी चित्तोन्मादिनी रूप राशि के नीचे काले सर्प का विषपोषण करती हो ! मिहिर के उत्तप्त मस्तिष्क में इसी प्रकार कितने ही भाव उठ रहे थे।

मिहिर चिन्ता-सागर में निमग्न हो सोचने लगा—"क्या विश्वासघातक ! मैं प्राण देकर उसे प्यार करता था, कभी भी उससे कटूक्ति न कही। पल मात्र के लिये भी कभी अनादर नहीं

किया ! धन-दौलत, दास-दासी, राजा सा सम्मान, पृथ्वी में जिसे लोग सच्चा सुख समझते हैं, वह सब कुछ तो इन्दु के चरणों पर ही चढ़ा दिया था। तो फिर ऐसा क्यों हुआ ? रमणियाँ क्या चाहती हैं ?

मिहिर की चिन्ता का स्रोत अब भी बन्द न हुआ। इसी प्रकार कितनी बातें उसने सोचीं—ब्रह्मानन्द का आविर्भाव,—सेफालिका का कुटिल हृदय,—उसकी ईर्ष्या,—वही तो समस्त अनिष्ट की मूल है,—उसी ने तो ब्रह्मानन्द के साथ इन्दु का प्रथम साक्षात् कराया था—इस प्रकार की और भी कितनी ही बातें सोचीं। उत्तप्त श्मशान के बीच से उष्ण वायु प्रवाह की भाँति कितनी चिन्ताएँ मिहिर के मस्तिष्क में उछल-कूद मचा रही थीं।

तापित की आन्तर्गति हारिणी, स्नेहमयी, तपस्विनी की भांति धीरे निद्रा ने आकर मिहिर को अपनी गोद में ले लिया। वह अचेत हो गया।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

कलङ्क भञ्जन

" Tellest thou of " ifs " ? Thou art a traitor.
Off with thy head."

—*Shakespeare.*

धी रात को खूब वृष्टि हुई। आकाश तब भी मेघाच्छन्न था। जड़ प्रकृति स्थिर थी—निश्चल थी। पूर्व गगन में उस समय प्रथम राग संचार हो रहा था।

मुक्त जंगले के बीच से प्रभात वायु ने प्रवेश कर मिहिर की निद्रा भंग की। वह अकस्मात् उठ खड़ा हुआ। मिहिर विच्छेद लेकर सोया था और हृदय में प्रतिशोध लेकर जागा। ब्रह्मानन्द ने उसके सुख-संसार में आग लगा दी है। मिहिर भी ब्रह्मानन्द का सर्वनाश करेगा। इन्दु के साथ गत रात्रि का मिलन ही मानो चिरकाल के लिये अन्तिम मिलन था। इसी वक्त मिहिर कलकत्ते जाकर इन सब बातों का प्रबन्ध करेगा। व्यग्र होकर वह कपड़े पहनने के लिये उद्यत हुआ।

इसी समय जंगले के छिद्र द्वारा देखा कि प्रभात कालीन

अंधकार में ही एक मनुष्य उसके गृह में प्रवेश कर रहा है। मिहिर ने विशेष लक्ष्य करके समझा कि वह है ब्रह्मानन्द ! ब्रह्मानन्द सदर दरवाज़े के सामने आकर खड़ा हो गया।

बारूद के स्तूप में आग लगाने से क्षण भर में उसकी प्रत्येक कणिका जिस प्रकार अग्नि के स्फुलिंग में जल उठती है, ब्रह्मानन्द के दर्शन से मिहिर का भी समस्त मांसपेशी उसी प्रकार क्रोध से जल उठा। मिहिर बड़ी ही जल्दी से नीचे उतर आया।

ब्रह्मानन्द आज प्रस्तुत होकर आया था। वह जानता था कि आज मिहिर के किस रूप के दर्शन होंगे तथापि इस प्रकार का उसे अनुमान नहीं था।

दरवाज़ा खोलते ही मिहिर क्रोधी बाघ की भाँति ब्रह्मानन्द के सामने खड़ा हो गया। मुट्ठी बाँध कर ब्रह्मानन्द की नाक के सामने ले जाकर कहा—"विश्वासघातक ! अब क्यों ? चला जा, कहे देता हूँ, चला जा !" क्रोध से मिहिर काँप रहा था।

कुछ विरक्त होने पर भी ब्रह्मानन्द ने आत्म-संयम कर कहा—"मिहिर सावधान रहो और सुनो। मैं आपकी स्त्री का संवाद सुनाने आया हूँ। इस समय वे कलकत्ते में हैं।"

विद्रुप स्वर से मिहिर ने कहा—सर्वनाश हुआ लम्पट ! हमारी स्त्री नहीं तुम्हारी स्त्री ? क्या वह अब भी नहीं मरी ? चला जा कहे देता हूँ, नहीं तो हमारा आत्म-संयम छूटा जा रहा है। हमारे सामने से दूर हो, नहीं तो तुम्हें गोली मार दूँगा !

धीरता और गम्भीरता से ब्रह्मानन्द ने उत्तर दिया—"मिहिर बाबू इतना क्रोध अच्छा नहीं है। शान्त होकर सुनिये मैं किस

लिये आया हूँ। मैं कहता हूँ मैंने आपकी स्त्री का अंग स्पर्श तक नहीं किया है। वह है हमारी माता!

अकस्मात् मानो किसी मंत्र से मिहिर का समस्त क्रोध शान्त हो गया। उसकी बद्ध मुष्टि धीरे से खुल गयी। अब ब्रह्मानन्द ने मिहिर का हाथ पकड़ कर बैठक-गृह में प्रवेश किया।

उस समय भी मिहिर का मुख रक्त वर्ण था। वह बोला—ब्रह्मानन्द, मैं अब भी तुम पर विश्वास नहीं करता। सच सच बता, इन्दु के साथ पहले तुम्हारा क्या सम्बन्ध था?

ब्रह्मानन्द—माता की शपथ कर कहता हूँ। कई वर्ष पहले इन्दु को देखा था। बस! उसके साथ मेरा प्रथम वाक्यालाप आपके ही सामने आज से तीन दिन पूर्व हुआ।

ब्रह्मानन्द की दृढ़ता देख मिहिर के चित्त में अब किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह सका। धीरे से काँपते हुए हाथ से उसने ब्रह्मानन्द का हाथ पकड़ कर कहा—"मुझे क्षमा करो, बताओ इन्दु कहाँ है? वह कल रात को क्यों भाग गयी।" मिहिर का स्वर उस समय बहुत कुछ स्वाभाविक किन्तु वाष्प-जड़ित था।

ब्रह्मानन्द ने कहा—उसके पहले आपको और भी संयत हो कर सभी बातें सुननी होंगी। इन्दु के पूर्व जीवन की बातें आपको स्थिर होकर सुननी पड़ेंगी।

मिहिर ने व्यग्र होकर कहा—बोलो भाई बोलो, मैं सब सुनूँगा। केवल मुझे इतना बताओ कि वह कलुषिता—तो—नहीं है? शेष बात का उच्चारण मिहिर ने काँपते हुए स्वर में किया।

ब्रह्मानन्द—मिहिर बाबू संसार में पवित्रता यदि कुछ है तो वह है इन्दु के हृदय में, जी जान से यदि स्वामी को कोई प्यार करना जानता है तो वह इन्दु जानती है। मिहिर बाबू मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि उसके समान रमणी-रत्न को पाकर आप भाग्यवान् हो गये हैं।

मिहिर ने नीरव होकर एक विश्वास छोड़ी। फिर बोला—किन्तु कल रात को उसने कहा कि पहले भी एकबार उसका विवाह हो चुका है।

ब्रह्मानन्द ने कहा—यह बात सच है, पर इस समय उसका स्वामी इस संसार में नहीं है। मिहिर का मुख काला हो गया। ब्रह्मानन्द ने उसे लक्ष्य कर कहा—मिहिर बाबू चंचल मत होइये, स्थिर होकर सभी बातें सुननी होंगी।

मिहिर चुप होगया। ब्रह्मानन्द कहने लगा। ग्यारह वर्ष की अवस्था में एक बार इन्दु का विवाह हुआ था। किन्तु बालिका यह भी पहचानने न पायी थी कि स्वामी किस वस्तु को कहते हैं कि इसके पूर्व ही वह चरित्र हीन, निष्ठुर स्वामी उसे पद्-दलित कर चला गया। इन्दु ने निराश्रय होकर क्रिश्चियन मिशनरी में आश्रम-ग्रहण किया। उसके बाद तो आप सब कुछ जानते ही हैं।

मिहिर ने व्यग्र होकर पूछा—उसके बाद ? उसका स्वामी क्या हुआ ?

ब्रह्मानन्द—वह योरोपीय युद्ध में मारा गया, ऐसा सुनने में आया था पर यह बात मिथ्या थी। वह चार वर्ष के बाद दैवयोग

से आपका इन्दु के साथ विवाह होने के पूर्व की सन्ध्या को बालीगञ्ज में आ उपस्थित हुआ।

कौन, कौन ? एँ ! वह कौन है ? कहते हुए मिहिर चंचल हो उठा। किसी अज्ञात आकुलता से उसका मुख-मण्डल मलिन हो गया।

गम्भीरता से ब्रह्मानन्द ने उत्तर दिया—वह है आपका बाल-सखा हतभाग्य नरेशचन्द्र !

"ओ हो !" कह कर महादुःख से मिहिर एक बार आसन से उठ कर फिर बैठ गया और मुक्त जंगले की ओर एक स्थिर अर्थच-शून्य दृष्टि निक्षेप कर कुछ सोचने लगा।

ब्रह्मानन्द ने कहा—और सुनिये। नरेश की हत्या-वाली रात को इन्दु ही गुप्त रीति से उससे मिलने गयी थी। जब वह मल्लिक महाशय के घर मिलने के लिये गया था तभी उसने इन्दु से ऐसा करने के लिये अनुरोध किया था।

एँ ! तो क्या इन्दु के ही साथ नरेश मिलने के लिये गया था, ओहो ! अब समझ में आया कि डिटेक्टिव का नाम सुन कर वह क्यों इतना डरती थी ! 'गोयन्दा नरेश के साथ साक्षात् करने वाले व्यक्ति को शीघ्र ही गिरफ़्तार करेगा' सुनकर ही वह हमारे घर से भाग गयी है।—कहते कहते मिहिर का देह काँपने लगा, स्वर रुद्ध हो गया।

ब्रह्मानन्द ने कहा—आपका अनुमान ठीक है। इन्दु उसी दुर्योग से उस रात को स्टेशन पर दौड़ी गयी ! दैव वश, मैं प्लेट-फ़ॉर्म पर उपस्थित था। उसने मुझ से सहायता की प्रार्थना की,

उस समय उपदेश देने अथवा कर्त्तव्य निर्धारित करने का समय नहीं था। कारण गाड़ी चल चुकी थी। मैंने उसे बेहोशी की हालत में अपने आत्मीय के घर कलकत्ते में रखा है। मैं उसके भागने में कभी सहायता नहीं देता, किन्तु मैंने इन्दु को जिस प्रकार आशङ्कित देखा, यदि मैं उसके साथ न जाता तो, उस अवस्था में वह मानो रास्ते में ही आत्म-हत्या कर लेती या कलकत्ते में जाकर दस्यु-कवल में पतित होकर आपके कुल में कलङ्क लगाती। यही मैंने आपकी दृष्टि में अपराध किया है, इसके लिये मुझे क्षमा कीजियेगा मिहिर बाबू!—अन्तिम बात ब्रह्मानन्द ने अभिमान के स्वर में कही।

"क्षमा करो ब्रह्मानन्द, भाई तुमने मेरे प्राण, मेरा कुल, मेरी स्त्री सब की रक्षा की है! मैंने तुम्हें न पहचान कर कितनी कटुक्ति कह डाली है।" कहते हुए मिहिर ने ब्रह्मानन्द को दोनों हाथों से पकड़ छाती से लगा लिया। ब्रह्मानन्द की आखों से उसी समय मिहिर के बिना देखे दो बूँद अभिमान के अश्रु गिर पड़े।

उस समय सूर्य निकल आया था। धीरे से एक और आदमी ने बैठक-गृह में प्रवेश किया—वह थी सेफालिका। मिहिर ने उसकी ओर आँख भी न उठायी।

सेफ़ालिका ब्रह्मानन्द को देख कर चौंक पड़ी। किन्तु गंभीर होकर विद्रुपस्वर में बोली—क्यों ब्रह्मानन्द, तुम फिर यहाँ आगये? एं! क्या मिहिर बाबू की पत्नी के साथ तुम्हारा प्रणय इनकी ही अनुमति के अनुसार हो रहा है क्या?

ब्रह्मानन्द ने क्रुद्ध सिंह के समान गर्ज कर कहा—"सावधान! प्रेतिनि! अब यदि इन्दु के सम्बन्ध में तुम्हारे मुख से इस प्रकार की बातें सुनूँगा तो—मैं तुम्हारे—ब्रह्मानन्द ने और कुछ न कह बड़े कष्ट से आत्म-संवरण किया।

सेफालिका को इस व्यवहार की आशा नहीं थी। अकस्मात् एक बार चंचल होकर फिर आत्म-संयम कर बोली—हाँ, अब समझ में आया। मिहिर दादा भी उसी पथ में हैं। मिहिर नीरव था उसकी आँखों में आग जल रही थी। किन्तु सेफालिका से उसने कुछ भी न कहा।

सेफालिका—"बहुत ही अच्छी बात है। ब्रह्मानन्द याद रखो, सेफालिका यह अपमान भूल नहीं सकती।" इसके बाद मिहिर की ओर देख कर बोली—"मिहिर दादा इन्दु के साथ ब्रह्मानन्द का क्या सम्बन्ध है, उसे तुम अब तक नहीं समझ सके। जो हो—एक और बात है। मैंने नरेशबाबू की हत्या के सम्बन्ध में एक अनुसंधान किया है। सुनोगे नहीं, तो पुलिस को ख़बर दे दूँगी।

मिहिर ने बड़ी गम्भीरता से पूछा—"क्या।"

सेफालिका ने उत्तर दिया—"उस दिन जो मैंने इन्दु को एक अंगूठी दी थी वह तुम्हें याद है। उस पर "एन० सी०" तथा ता० "१९१४" खुदा हुआ था। मैंने अच्छी तरह से समझ लिया है कि एन० सी० नरेशचन्द्र के नाम के आदि अक्षर हैं। और बहुत सम्भव है कि १९१४ में इन्दु के साथ उसका विवाह हुआ था। इन्दु ने सुना वह युद्ध में मारा गया। इसी लिये सभी

बातें गुप्त रख कर वह तुम्हारे साथ विवाह करने चली थी कि ठीक उसी समय नरेश बाबू बालीगंज में आगये। इन्दु ने देखा, उसे पथ से नहीं हटाने से तुम्हारे साथ मिलन नहीं हो सकेगा इसी लिये उसी ने उस रात को नरेश की हत्या की और पकड़ी जाने के भय से ब्रह्मानन्द की सहायता पाकर बाली-गंज से भाग गयी है !

ब्रह्मानन्द आश्चर्यान्वित होकर मन ही मन सेफालिका के बुद्धि की प्रशंसा कर रहा था। किन्तु मिहिर से अब चुप न रहा जा सका। वह काँपते हुये अपने आसन से उठकर बोला—सेफालिका यदि दरवान के हाथ से अपमानित न होना चाहो तो अभी हमारे मकान के बाहर चली जा। फिर यदि इन्दु का नाम लेकर कुछ भी बोलेगी तो मुझे स्वयं तुम्हें दण्ड देना पड़ेगा। तू साँप से भी अधिक भयंकर है, तू ही हमारे और इन्दुमती के विच्छेद का प्रधान कारण है। तूने बराबर इन्दु-मती की प्रतिद्वन्दिता की है— पर मैं कहे देता हूँ कि तू इन्दु के पैर की धोअन के समान भी नहीं है।" सेफालिका का मुख-माण्डल क्रोध से आरक्तिम होगया। वह किस आशा से आयी थी और क्या देखना पड़ा। किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर सेफालिका कुछ देर के लिए वहीं खड़ी रह गयी।

मिहिर फिर बोला—हाँ जाने के पहले कुछ और सुनती जा। नरेश का हत्याकारी कौन है ? वह नरेश का ही एक प्राचीन मित्र है, जिसे नरेश ने मिथ्या अभियोग में जेल भिजवाया था। उसका नाम है—सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त !

"कौन ? कौन ? सुरेन ? सर्वथा मिथ्या ! उसे तो मरे भी बहुत दिन हो गये। आपने झूठी ख़बर पायी है। वह मेरा भी बाल-सखा है। मैं उसकी बातें विशेष रूप से जानता हूँ।" कहते हुए ब्रह्मानन्द खड़ा होगया।

मिहिर ने गम्भीरता पूर्वक कहा—ब्रह्मानन्द ! बात मिथ्या नहीं है। सुरेन मरा नहीं था। जेल से बाहर आने पर नदी के किनारे कपड़े उतार वह पानी में डूबा तो अवश्य, किन्तु यह सब काण्ड किया केवल लोगों को धोखा देने के लिये। इसके बाद गले में कोपीन धारण कर अविनाश चन्द्र वन्द्योपाध्याय के नाम से श्रीरामपुर में रहने लगा। पुलिस ने उसके सब रहस्य का पता लगा लिया है। वह कल संध्या समय कलकत्ते में गिरफ़ार भी हो गया है। केवल इतना ही नहीं, उसने सब दोष स्वीकार भी किये हैं।

ब्रह्मानन्द स्तम्भित होकर कुर्सी पर बैठ गया। सेफालिका काँपती हुई घर से बाहर हुई।

मिहिर ने उसे बुलाकर कहा—हाँ जाते समय याद दिला देता हूँ सेफालिका—मेरी अनुमति बिना मेरे घर की सीमा के अन्दर न आना।

सेफालिका क्रोध से गुन् गुन् करती हुई चली। जल्दी में जाने के कारण सीढ़ी से गिरते गिरते बच गयी ! दरवान निकट ही बैठा था। वह व्यस्त होकर खड़ा होकर कहने लगा—हाय रे माँजी गिर जायगा, आस्ते चलिये !

सेफ़ालिका और क्रुद्ध होकर बोली—"मर हतभागा, राक्षसी का बेटा कहीं का।"

उस कुलीन दरवान को सेफालिका यदि हनुमान का बेटा अथवा जाम्बुवान की पत्नी का भाई भी कहती तो भी वह आनन्द से फूला न समाता। सहस्रों बार सलाम करता। किन्तु उसे श्रीरामचन्द्र की शत्रु सन्तान कह कर सेफालिका ने उसका घोर अपमान किया। वह अपमान सह न सका। तुरन्त उसने अपने बाबू से नालिश कर ही तो दी।

उपसंहार

"My pen is at the bottom of a page,
Which being finished, here the story ends ;
T'is to be wished it had been sooner done,
But stories some how lengthen when begun '

—*Byron.*

ह की घोर निद्रा में इन्दु ने स्वप्न देखा—सुनील नभमण्डलहै। पुञ्ज पुञ्ज में धूम्रमेघ चतुर्दिक चक्कर लगा रहे हैं। कुछ ही ऊपर पूर्ण चन्द्र है। हाथ बढ़ाने से ही पकड़ लिया जा सकताहै। उसकी प्रत्येक ज्योत्स्ना कणिका के बीच से अमृत की धारा बह रही है। इन्दु मिहिर के पास किसी अद्भुत द्रव्य पर बैठ उसी मेघ राज्य की ओर देख रही है। अकस्मात् काले बादलों में चन्द्रमा छिप गया, विद्युत् एक बार विद्रुप कटाक्ष कर चली गयी। सिर पर वज्र गर्ज उठा। देखते ही देखते चारों ओर से नक्षत्रपात होने लगा। अग्नि शलाका की भाँति चारों ओर से रक्त-उल्का छूटने लगी। इन्दु भय पूर्वक मिहिर का

हाथ पकड़ने चली—इसी समय वह कक्षच्युत होकर सुदूर निम्न मलिन कुहासे के अन्तराल में विस्मृत धरणी के अभिमुख में जा पड़ी,—मिहिर ने उस ओर नज़र भी न फेरी।

इन्दु अपनी शय्या को दोनों हाथों से अच्छी तरह पकड़े हुए थी—एकाएक नींद खुल गयी। उसके शरीर से पसीना निकल रहा था—अंग प्रत्यंग काँप रहा था।

इसी समय एक अष्ट वर्षीया बालिका आनन्द से हँसती हुई आयी। इन्दु का हाथ पकड़ लिया और "अले डीडी जाग गयी ले" कहते हुए अपने छोटे भाई को बुलाने लगी।

वह बच्चा—"कौन एं कौन" कहता हुआ इन्दु की गोद में बैठ गया मानो उन लोगों का चिरकाल का परिचय था।

इन्दु अवाक होकर इधर उधर देखने लगी। वह कहाँ आ गयी है? यह तो सम्पूर्ण प्रकोष्ठ उसका अपरिचित है। ये बालक बालिका कौन हैं? उसके सिर में चक्कर आ गया।

डीडी तुम बाट काहे नहीं बोलटी—कह कर बालिका हँसने लगी। बालक इन्दु का मुख देखता रहा। धीरे से इन्दु का चिबुक पकड़ लिया।

इन्दु ने बड़े आदर से पूछा—भाई किसका घर है? हमें यहाँ कौन लाया?

बड़े प्यार और भोलेपन के साथ बालिका ने उत्तर दिया—'तुमको वह्म डाडा ने लाया डीडी। कल राट को।' इस आलाप से उसका सम्बन्ध मानों घनिष्ठतर हो गया। बालिका भी इन्दु

की गोद में बैठना चाहती थी कि बच्चे ने 'ना' कह कर उसे दूर ढकेल दिया।

एक एक कर सभी बातें इन्दु को याद आने लगीं। गत रात को ट्रेन में बेहोश होकर पड़ जाना, बेलिया घाटा स्टेशन पर कुछ होश आना, ब्रह्मानन्द की सहायता से टैक्सी पर चढ़ना और फिर बेहोश हो जाना! उसके बाद—शायद ब्रह्मानन्द यहीं लाया—सम्भवतः यह उसके किसी आत्मीय का घर है—ब्रह्मानन्द कहाँ है?

इन्दु ने व्यस्त होकर पूछा—बच्ची, अच्छा भाई! तुम्हारा ब्रह्मानन्द दादा कहाँ है? एक बार बुला दोगी?

'मैं बुला दूँगा' 'मैं बुला दूँगा' कह कर बालक झट से नीचे उतर गया। बालिका हँसती हुई बोली—बुलाटो डेखें बह्म डाडा फिर कल राट को चला गया।—हाँ।

इन्दु ने व्यग्र होकर पूछा—कहाँ, कहाँ चला गया? बालिका ने कहा—क्यों बालिगण्ड गया है। तुम टब सोती ठी। फिर शाम को आवेगा। हमारे लिये मिथाई भी लावेगा—हाँ—।

इन्दु स्तम्भित होकर सोचने लगी—"फिर बालीगंज चला गया? क्यों? पर क्षण भर में ही सभी बातें समझ गयी। इन्दु जानती थी ब्रह्मानन्द उसका हितैषी है। उसने समझा है कि शायद इन्दु मिहिर के साथ झगड़ा कर आयी है। इन्दु को यह बात स्मरण ही नहीं है कि उसने ब्रह्मानन्द से यह कहा है या नहीं कि उसे (इन्दुको) पकड़ने के लिये पुलिस बाहर निकली है और मिहिर ने भी शायद इस विषय में उसे

सहायता देने की बात कही है। ब्रह्मानन्द अवश्य ही मिहिर के पास जाकर इन्दु के भागने और कलकत्ते में अपने आत्मीय के घर रखने की बात कहेगा। उसके बाद! इन्दु का रोम रोम काँप उठा। मिहिर ब्रह्मानन्द को गिरफ़्तार करा कर इन्दु की खोज के लिये यहाँ आवेगा और साथ ही साथ आवेगा वह डिटेक्टिव! मालूम होता है वह अभी आने चाहता है। उपाय? तब उपाय क्या है? इन्दु का शरीर काँपने लगा! बालक बालिका दोनों ही देखकर अवाक् होगये।

उस समय साढ़े सात बजे थे। नीचे गाड़ियों का घर्घर शब्द और अनन्त जन का कोलाहल सुनायी देता था। इन्दु ने उठकर एक बार जंगले के छिद्रों से देखा—नीचे प्रशस्त राजपथ है, उसके बीच में ट्राम चल रही है। उसने अनुमान से जाना कि यही कलकत्ते का हरिसन रोड है।

तब उपाय ही क्या है? अभी अभी पुलिस आकर पकड़ लेगी। ब्रह्मानन्द ने ऐसा क्यों किया। अभागा अहमक़ ज़रा मुझसे सलाह भी न कर सका। चला गया।

सोचते सोचते इन्दु को ब्रह्मानन्द के उपर भारी क्रोध हो आया। अस्थिर होकर वह जल्दी से घर में चली गयी।

नवागता दीदी की ऐसी उदासीनता और अनादर देख दोनों बच्चे व्यथित चित्त से अपनी माँ के पास अभियोग करने के लिये चले गये।

अकस्मात् इन्दु ने सुना नीचे फुटपाथ पर हॉकर चिल्ला

चिल्ला कर अख़बार बेचते हैं—मतवाला भारतमित्र, सर्वेण्ट—आज बड़ा मज़ा है बाबू बालीगंज में .खूनी का पता लगा।

ऐं! तो क्या यह बात सभी जान गये। ना, अब कलकत्ते में भी मेरे लिये स्थान नहीं है। यहीं पुलिस आकर गिरफ़्तार कर लेगी! इन्दु ने क्षण भर तक सोचा। कल रात के समय किसने मेरे समस्त कपड़े लत्ते निद्रावस्था में उतार कर निकट ही रख दिये। इन्दु ने जल्दी से उन्हें पहन लिया। नीचे उतर कर जाने के लिये प्रस्तुत हो गयी। फाटक पर कोई है या नहीं यह देखने के लिये उसने जंगले के छिद्रों से एक बार उचक कर देखा। किन्तु जो कुछ देखा, उससे उसकी अन्तरात्मा सूख गयी!

इन्दु ने देखा घर के फाटक के पास ही अनेक लोगों की भीड़ लगी हुई है। लोगों के बीच एक मोटर गाड़ी खड़ी हुई है। दो तीन पुलिस कान्स्टेबुल भी वहीं खड़े खड़े तर्क वितर्क कर रहे हैं। (दैवात् मोटर ड्राइवर की असावधानी से एक बैल-गाड़ी में धक्का लग गया था)—और उसके बाद?—जनता की भीड़ चीरते हुए दो आदमी मोटर से उतर आये। उनमें से एक था मिहिर और दूसरा ब्रह्मानन्द। न जाने क्यों दो कान्स्टेबुल भी भीड़ में से .फुट पाथ पर चले आये।

इन्दु को अब विन्दु मात्र भी सन्देह न रहा। वह जान गई कि मिहिर और ब्रह्मानन्द उसे पकड़वाने के लिये आ रहे हैं।

इन्दु की समस्त शिराओं में मरणातङ्क की अन्तिम बिजली दौड़ गयी। वह क्षण भर भी वहाँ खड़ी न रही। उसका मस्तिष्क

विकृत हो गया। अकस्मात् वह निश्चय न कर सकी कि क्या करना चाहिये! अतः छत की ओर जाने लगी। घर से बाहर निकलते ही सीढ़ी दीख पड़ी झटपट ऊपर चली गयी। सीढ़ी पर चढ़ते समय उसने सुना कि मिहिर पागलों की भाँति पुकार रहा है—"इन्दु! इन्दु!"

तीन तल्ले पर खुली छत है—ऊपर विराट नभमण्डल की छाया की भाँति पृथ्वी से बहुत ऊँचे नीरव-विस्तृत-राज्य है। उसके चतुर्दिक उन्मुक्त है, किसी भी ओर पत्थर या लोहे का कोई परिवेष्ठन नहीं है।

इन्दु काँपती हुई उठ खड़ी हुई। किन्तु सुना अपने पीछे सीढ़ी के ऊपर बहु जन पद-शब्द। अब इन्दु ने अच्छी तरह समझ लिया कि दूसरे ही मुहूर्त्त पुलिस के हाथ में पड़ना होगा तब? उपाय ही क्या है?

उद्यत-शस्त्र अथवा धावमान किरात के कवल से पलायमाना कुरङ्गी जिस प्रकार तीव्र गति से महाँ जंगल भेद करती हुई अन्त में खरस्रोता तटिनी की भंगुर तीर भूमि में आ खड़ी होती है और निषाद की निर्मम हत्या से तरङ्गित वारिधि के अन्तराल में स्वाधीन मृत्यु को अधिक प्रिय समझ उसमें कूदने के लिये उद्यत हो जाती है, इन्दु के हृदय में भी न जाने किसने वही अभिलाषा जगा दी।

पल भर में ही इन्दु छत के शेष प्रान्त में दौड़ गयी; किन्तु कूदने का साहस न हुआ। नीचे देखने से ही उसे भय हो गया। उसने देखा प्रायः चालीस हाथ नीचे एक बड़ा भारी अन्धकार

पूर्ण कंकड़ों का स्तूप है। तब उपाय क्या है?—इन्दु पत्तों की भाँति काँप रही थी।

अकस्मात् उसके मन में कुछ भाव उत्पन्न हो गया। ऊपर की ओर देखा —सुनील अनन्त आकाश—वाधा नहीं, कालिमा नहीं, महिमामय मुक्त छबि है। निर्मेघ गगन में तीव्र सूर्य चमक रहे हैं, चंचल समीरण इन्दु का धर्म सिक्त कलेवर शीतल कर रहा है। एकाएक मानो इन्दु ने किसी आनन्द का अनुभव किया!

सुख के दिनों में मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व को भी भूल जाता है—मन ही मन कहता है। 'अपने ही बाहुबल से विश्व विजय कर लूँगा!' किन्तु जब उसके जीवन में इस प्रकार का एक मुहूर्त्त भी आजाय जिस समय चारों ओर से उसकी समस्त आशाओं का बन्धन छिन्न हो जाय, उसकी समस्त उछलकूद और आत्म-गरिमा अलीक-स्वप्न की भाँति शून्य में मिल जाय, जिस समय उसे अपना कहने के लिये कोई भी न रह जाय, उस समय मनुष्य एक बार नत जानु होकर बैठ जाता है, और उसी समय एक बार उसके कम्पित कर—द्वय अञ्जुलि-बद्ध होकर ऊपर को उठ जाते हैं।

इन्दु के भी आज उसी जीवनमरण के सन्धिस्थल में वही दुर्लभ मुहूर्त्त आगया है! बहुत दिनों से इन्दु ने ईश्वर का नाम भी लिया है, किन्तु अकस्मात् इस महा त्रास के अन्तराल से उसके हृदय में मानों किसी ने कहा—"मैं हूँ।" इन्दु के नयन कोर से अश्रु बून्द टपक पड़े,—वह घुटने टेक के बैठ गयी। इन्दु ने ऊपर की ओर अञ्जुलिबन्धन कर निमीलित नेत्र, करुण कण्ठ

से आर्त होकर पुकारा—"हे भगवन्, यदि तुम हो, तो मेरी रक्षा करो, मैं निरपराधिनी हूँ।"

रुद्धश्वास से मिहिर छत के ऊपर जाकर खड़ा हो गया किन्तु वहाँ जो दृश्य उसने देखा उससे पग भर भी आगे नहीं बढ़ सका। मिहिर ने देखा—सामने एक देवीमूर्त्ति है,—उसके बदन में अग्निप्रभा है,—नयनों से अश्रुधारा बह रही है, कर-युगल अञ्जुलिवद्ध है। चुपचाप ज्वलन्त तपन उसे एक टक देख रहा है,—धीर समीर उसके भ्रमर-कृष्ण केशकलाप को डुला रहा है, और कहीं भी कोई नहीं हैं।

मिहिर चौंक पड़ा! "इन्दु इतनी सुन्दरी? एँ?—इन्दु—इन्दु!" कहते हुए दौड़ गया; पल भर में ही दो हृदय एक हो गये! उस गम्भीर आवेश में मिहिर को स्थान काल आदि का कुछ भी ध्यान न रहा—वह भी मानो ऊर्द्ध समाहित हो गया था!

'क्या किया? क्या किया? मिहिर बाबू' कहते हुए ब्रह्मानन्द ने भयभीत होकर पुकारा और जल्दी से मिहिर और इन्दु को अपनी ओर खींच लिया। मिहिर चौंक कर खड़ा होगया। देखा, उस प्राचीन तीन तल्ले की भंगुर छत का शेष प्रान्तस्थ इन्दु का उपनिवेशन स्थान दूसरे ही मुहूर्त्त में टूटकर महाप्रलय का शब्द करता हुए नीचे गिर गया।

इन्दु उस समय मिहिर के गले में चिपकी हुई काँप रही थी। उसके अन्तर हृदय में सबल कण्ठ से किसी ने फिर कहा—"मैं हूँ"

बालीगंज जाने के पूर्व मिहिर ने इन्दु के अनुरोध से उसका जन्म पत्र मंगाकर किसी ज्योतिष शास्त्र के पण्डित से दिखलाया। सुना कि उसी दिन प्रभात काल में इन्दु के अदृष्ट का क्रुद्ध शनिग्रह उसकी राशि को त्याग कर चला गया। यह सब था ग्रह का फेर !!